ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अगस्त २०१७

Date of Printing = 05-8-17
प्रकाशन दिनांक= 05-8-17

वर्ष ४६ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : १९३
विक्रम-संवत् : आषाढ़-श्रावण, २०७४
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११८

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

❑ शास्त्रार्थ	२
❑ वेदोपदेश	३
❑ शिक्षा और स्वतन्त्रता	४
❑ प्रश्नोपनिषद् की कथा	६
❑ ओहो! वह समर्पण भाव-2	९
❑ महर्षि दयानन्द सरस्वती......	१२
❑ योगेश्वर कृष्ण.......	१४
❑ स्त्री-पुरुष.....	१७
❑ सर सैयद.....	१८
❑ श्री कृष्ण चन्द्र.......	२२
❑ भारतवर्ष की नींव.....	२३
❑ उपनिषदों का त्रैतवाद.....	२६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

शास्त्रार्थ

विषय : **क्या ईश्वर का अवतार होता है?**
प्रधान : **श्री मास्टर बोधराज जी**
दिनांक : **20, 21 दिसम्बर सन् 1919 (दिन के दो बजे)**
शास्थार्थ कर्ता : **शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमर सिंह जी 'आर्य पथिक' वर्तमान महात्मा अमर स्वामी जी महाराज एवं**
सनातन धर्मियों की ओर से : श्री पं. गोकुल चन्द जी शास्त्री

जुलाई २०१७ से आगे

आर्यसमाज में जब शास्त्रार्थों का युग था, तब गैर आर्यसमाजी लोग आर्यसमाज में आते व बड़े चाव से हमारी बात सुनते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे विद्वानों के शास्त्रार्थों में से एक शास्त्रार्थ का प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

-सम्पादक

ईश्वर जन्म लेता है, ऐसा बताने वाला वेद में कोई मन्त्र है तो बताइये?

२. प्रतद्वविष्णु स्तवते वीर्येण.- आदि मन्त्र में न नृसिंह अवतार का नाम है, न भक्त प्रहलाद तथा व उसको सताने वाले उसके पिता हिरण्यकश्यम का कहीं नाम निशान है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है।

इस मन्त्र में उपमालंकार है, जैसे सिंह अपने पराक्रम से अन्य पशुओ का वध करता फिरता है, वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोगों का नियमन करता है।

३. भद्रो भद्रया सह. इस मन्त्र में न राम है, न सीता, और न रावण है, भद्र का अर्थ राम ही क्यां कोई भी भला पुरुष भद्र कहला सकता है। मैं कहता हूं इस मन्त्र में भद्र श्री पं. गोकुल चन्द जी शास्त्री को कहा गया है। तो आप कैसे मेरी बात का खन्डन करेंगे, वैसे इस पूरे मन्त्र का अर्थ मैं आपको कहे देता हूं। पहले पूरा मन्त्र सुनिये -

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सु प्रकेतैर्द्युभिरिग्नर्वितिष्ठन्नु शद्‌भिर्वणौरभि राममस्थात्।।३।।

ऋग्वेद मन्डल १० सूक्त ३ मन्त्र ३,

जैसे (**जारः**) रात्रि का विनाश करता हुआ सूर्य (**स्वसारं पश्चात् अभि एति**) अपनी भगिनी के तुल्य अन्धकार हटाने वाली उषा के पीछे-पीछे दौड़ता है, और स्वयं (**भद्रः**) सुखकारी होकर (**भद्रया सचमानः आगात्**) सुखदायिनी उषा के साथ मिल कर आता है, और वह (**उशद्‌भिः वर्णोः**) उज्वल रश्मियों से (**रामम् अभि अस्थात्**) रात्रि के अन्धकार को पराजित करता है, वैसे ही (**भद्रः**) प्रजा को सुख देने वाला विद्वान (**भद्रया सचमानः**) प्रजा को सुख देने वाली बुद्धि वा नीति से युक्त होकर (**आगात्**) प्राप्त हो। वह (**जारः**) शत्रु या दुष्टों का नाश करने वाला होकर (**स्वसारं**) सुख से शत्रु को उखाड़ने वाली सेना वा (**स्वसारं**) स्वयं आने वाली प्रजा के (**पश्चात् अभिएति**) पीछे तदनुकूल रहकर वश करे। वह (**अग्निः**) अग्नि के समान पुरुष (**सु-प्र-कैतेः**) ज्ञानवान् (**द्युभिः**) रश्मितुल्य विद्वानों के साथ (**वितिष्ठन्**) विविध कार्यो को करता हुआ (**उशद्‌भिः**) उज्जवल कामना वाले (**वर्णेः**) विद्वानों के साथ (**रामम् अभिअस्थात्**) अन्धकार तुल्य शत्रु पर चढ़ाई करे।

नोट- इस मन्त्र में जार यदि रावण को कहा गया है, तो -

''स्वसारं जारो अभ्येति''

का क्या अर्थ होगा

(क्रमशः)

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः। **यज्ञः = स्पष्टम्।** स्वराडार्षी त्रिष्टुप। धैवतः।।

स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते।।

वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है।।

ओ३म् पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि। परमेण धाम्ना दृँहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।2।।(यजु. १/२)

पदार्थ: **(वसोः)** वसुः **(पवित्रं)** पुनाति येन कर्मणा तत् **(असि)** भवति। **(द्यौः)** विज्ञानप्रकाशहेतुः **(असि)** भवति **(पृथिवी)** विस्तृतः **(असि)** भवति **(मातरिश्वनः)** मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः। अग्नितापयुक्तः शोधकः। **(असि)** भवति **(विश्वधाः)** विश्वं दधातीति **(असि)** भवति **(परमेण)** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **(धाम्ना)** सुखानि यत्र दधति तेन। **(मा)** निषेधार्थे **(ह्वाः)** ह्वरतु। **(मा)** निषेधार्थे **(ते)** तव **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य स्वामी यज्ञकर्ता यजमानः। **(ह्वार्षीत्)** ह्वरतु ह्वर वा।

सपदार्थान्वयः हे विद्वन्मनुष्य! त्वं यो वसोः=वसुरयं यज्ञः, पवित्र मसि=पवित्रकारकोऽस्ति (पवित्रम्=पुनाति येन कर्मणा तत्, असि=भवति), **द्यौरसि=सूर्यरश्मिस्थो भवति** (द्यौः=विज्ञानप्रकाशहेतुः, असि=भवति), **पृथिव्यसि=वायुना सह विस्तृतो भवति** (मातरिश्वनः=मातरि=अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः, धर्मः=अग्नितापयुक्तः शोधकः, असि=भवति) **विश्वधाअसि=संसारस्य सुखधारको भवति** (विश्वधाः=विश्वं दधातीति, असि=भवति) **परमेण** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **धाम्ना** सुखानि यत्र दधति तेन **सह दृंहस्व=दृंहते=वर्धते।**

तमिमं यज्ञं मा ह्वाः=मा त्यज, (ह्वाः=ह्वरतु), **तथा-ते=तव यज्ञपतिः** यज्ञस्य स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमानः। धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति-विद्या-ज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपार-मार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं, सम्यक्पदार्थ-गुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं, शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरिणामिति, **तं मा ह्वार्षीत्=मा त्यजतु** (ह्वार्षीत्=ह्वरतु ह्वर वा) ।।१।२।।

भाषार्थ : हे विद्वान् मनुष्य! तू जो **(वसोः)** यज्ञ **(पवित्रम्)** पवित्र करने वाला **(असि)** है, अर्थात् पवित्र करने वाला कर्म है, **(द्यौः)** सूर्य की किरणों में स्थिर और विज्ञान प्रकाश का हेतु **(असि)** है, **(पृथिवी)** वायु के साथ देश-देशान्तरों में फैलने वाला **(असि)** है, तथा **(मातरिश्वनः)** वायु का **(घर्मः)** शोधक **(असि)** है, अर्थात्-अन्तरिक्ष में गति करने से वायु का नाम मातरिश्वा है, उस वायु का **(घर्मः)** अग्नितap से शोधक है, **(विश्वधा)** संसार के सुख को धारण करने वाला **(असि)** है एवं विश्व का धारक है, **(परमेण)** उत्तम सुख से युक्त **(धाम्ना)** लोक के साथ **(दृहस्व)** बढ़ता है।

उस यज्ञ का **(मा ह्वाः)** त्याग मत कर तथा **(ते)** तेरा **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमान भी उसे **(मा ह्वार्षीत्)** न छोड़े। धात्वार्थ के कारण 'यज्ञ' शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है

१. विद्या, ज्ञान और धर्माचरण से वृद्ध विद्वानों का इस लोक और परलोक के सुख की सिद्धि के लिए सत्कार करना, २- अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोधज्ञान की संगति से शिल्प विद्या का प्रत्यक्ष करना एवं नित्य विद्वानों का संग करना, ३-शुभ विद्या, सुख धर्मादि गुणों का नित्य दान करना।।

❑❑

शिक्षा और स्वतंत्रता

(धर्मपाल आर्य)

शिक्षा मानव की मूलभूत आवश्यकता है। यदि समाज राष्ट्र और परिवार इस मूलभूत आवश्यकता से वञ्चित रहता है, तो उस समाज, राष्ट्र व परिवार की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं रह सकती। किसी भी राष्ट्र की एकता, अखण्डता शिक्षा की नींव पर टिकी होती है, शिक्षा ही समाज को, राष्ट्र को अधिकारों का, कर्त्तव्यों का और स्वतन्त्रता का सच्चे अर्थों में बोध कराती है। आज मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि आज शिक्षा में व्यवसाय पर ध्यान है लेकिन जिस समाज व राष्ट्र में पल रहे हैं, बढ़ रहे हैं उसके प्रति उनके क्या कर्त्तव्य हैं, उसका ज्ञान या तो उन्हें है नहीं या फिर उन्हें उनका ज्ञान कराया नहीं जाता है। शिक्षा स्वतन्त्रता को वास्तविक स्वरूप प्रदान करती है। लेकिन आज शिक्षा बदहाली के जिस दौर से गुजर रही है, उससे स्वतन्त्रता का अर्थ, उसका महत्व हाशिए पर चला गया है। स्वतन्त्रता की मनमानी परिभाषा राष्ट्र व समाज में अराजकता को जन्म देने वाली होती है, इस सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित आर्य समाज का दसवाँ नियम स्वतन्त्रता की सार्थकता प्रदान करता है- "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें"। राष्ट्र-हित के सामने जब निजी हित मुख्य होने लगते हैं अथवा देश की एकता और अखण्डता के लिए जब व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चुनौती बनने लगती है, तब राष्ट्र गृह-युद्ध की विभीषिका में फंस जाता है इसीलिए महर्षि को लिखना पड़ा कि समाज के जो सर्वहितकारी नियम हैं, उन्हें पालने में अपने निजी स्वार्थों को आड़े नहीं आने देना चाहिए। "वन्देमातरम्" राष्ट्रीय गीत है, जिसे गाते-गाते लाखों लोगों ने अपने जीवन और जवानी को कुर्बान कर दिया। उस समय उसको गाने वाले और इसे गाकर स्वतन्त्रता प्राप्ति का संघर्ष करने वाले बलिदानियों ने कभी नहीं कहा कि मैं मुसलमान हूँ , "वन्दे मातरम्" नहीं गाऊंगा, मैं यहूदी हूँ या ईसाई हूँ, इसलिए ''वन्दे मातरम'' नहीं गाऊंगा क्योंकि वे सभी देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थे, उनका बलिदान भी हमें यही शिक्षा देता है कि "वन्दे मातरम्" किसी एक सम्प्रदाय का किसी एक जाति का अथवा किसी समुदाय का नहीं, अपितु समग्र राष्ट्रीयता तथा उसकी गरिमा की प्रतीक है। जब कोई राष्ट्रीय प्रतीकों को अथवा राष्ट्रीय गीत अथवा परम्पराओं को साम्प्रदायिक कट्टरता के नजरिये से देखेगा, तो मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं कि ऐसे किसी समुदाय अथवा व्यक्ति की देशभक्ति पूर्णतया संशय के घेरे में है, फिर चाहे वह कोई तथाकथित स्वयंभू आर्य संन्यासी ही क्यों न हो। राष्ट्रीय गीत गाने में, अथवा राष्ट्रगान गाते समय खड़े होने में यदि किसी के आड़े उसका सम्प्रदाय या उस सम्प्रदाय की मान्यताएं आती हैं, तो अवश्य उस सम्प्रदाय और उस व्यक्ति के लिए राष्ट्र बड़ा नहीं है उसके लिए उसका समप्रदाय बड़ा है और राष्ट्र की तुलना में जिसके लिए सम्प्रदाय बड़ा है, ऐसे किसी भी व्यक्ति से देशभक्ति की उम्मीद करना व्यर्थ है। धारा ३७० के तहत विशेष राज्य का दर्जा प्राप्त जम्मू कश्मीर के एक समुदाय के लोग जिस प्रकार आजादी का नारा बुलन्द करते हुए सुरक्षाबलों पर पत्थरबाजी करते हैं, विद्यालयों में आगजनी करते हैं, जिस देश में रहते हैं, उसी के विरुद्ध नारे लगाते हैं, जिस देश में रहते हैं, उसी के विभाजन का सपना देखते हैं, उनकी इन राष्ट्र विरोधी हरकतों से एक अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है कि उनकी नैतिक शिक्षा का स्तर कितना गिरा हुआ है। उनकी अपने समुदाय के प्रति भक्ति है, उनकी अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थ के प्रति भक्ति है लेकिन जिस राष्ट्र में रहते हैं, उसके प्रति भक्ति नहीं ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि उनको केवल अपने सम्प्रदाय के प्रति, अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थ के प्रति, अपने समुदाय के प्रति कृतज्ञ और वफादार रहने की शिक्षा मिली है, उन्हें राष्ट्र के प्रति कृतज्ञ रहने की किसी ने शिक्षा नहीं दी है। यदि शिक्षा दी भी जा रही है, तो किसके द्वारा क्या शिक्षा दी जा रही है? वो शिक्षक हैं मीरवाई उमर फारुक, वो शिक्षक हैं अहमद शाह गिलानी, वो शिक्षक हैं शब्बीर शाह, वो शिक्षक हैं यासीन मलिक। जो कशमीर के युवाओं को शिक्षा दे रहे हैं देशद्रोह की, वो शिक्षा दे रहे हैं राष्ट्रीय सम्पत्ति को तबाह करने की, वो शिक्षा दे रहे हैं सुरक्षा बलों पर पत्थर बाजी की, वो शिक्षा दे रहे हैं देश की एकता और अखण्डता को खण्डित करने की, वो शिक्षा दे रहे हैं देश की सांस्कृतिक परम्परा को तहस-नहस करने की, वो शिक्षा दे रहे हैं देश के विरुद्ध बगावत करने की, वो शिक्षा दे रहे हैं देश में अस्थिरता फैलाने की, वो शिक्षा दे रहे हैं भारत से और एक वर्ग विशेष से

नफरत करने की और वो शिक्षा दे रहे हैं पाकिस्तान के इशारे पर राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को अंजाम देने की, जब इस्लाम के नाम पर आजादी का, विश्वासघात का और राष्ट्रद्रोह का पाठ पढ़ाया जायेगा, तो कैसे शान्ति, अनुशासन और भाईचारा कायम होगा? जिस कश्मीरी युवा पीढ़ी का आदर्श देशभक्त क्रान्तिकारी अशफाक उल्ला खाँ होना चाहिए, जिस कशमीरी युवा पीढ़ी के प्रेरणास्रोत बलिदानी सैनिक अब्दुल हमीद होना चाहिए, जिस कशमीरी युवा पीढ़ी के आदर्श मौलाना अबुल कलाम आजाद होना चाहिए और कश्मीरी युवा पीढ़ी के प्रेरणास्रोत देशभक्त मिसाइलमैन और देश के पूर्व राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जैसे महापुरुष होने चाहिए, उस कशमीरी युवा पीढ़ी के आदर्श, प्रेरणास्रोत, मार्गदर्शक जब राष्ट्र में आतंकवाद और अलगाववाद को हवा देने वाले, देशद्रोह का पाठ पढ़ाने वाले तथा एक समुदाय में दूसरे दूसरे समुदाय के प्रति घृणा का जहर भरने वाले आदर्श बनेंगे, तो फिर कैसे कश्मीर की वादियों में अमन चैन की वापसी होगी? पाठक सोचते होंगे कि शिक्षा और स्वतन्त्रता के बहाने कशमीर को लेकर मैं अपनी पीड़ा तो नहीं कहना चाह रहा? क्योंकि अधिक चर्चा कशमीर को लेकर ही मैंने की है। क्या स्वतन्त्रता और शिक्षा का मसला केवल कश्मीर में ही डाँवाडोल हो रहा है? क्या देश के अन्य भागों में शिक्षा और स्वतन्त्रता चिन्ता का विषय नहीं है। वैसे तो शिक्षा और स्वतन्त्रता के मायने पूरे देश में बदले हुए हैं लेकिन जम्मू कश्मीर में शिक्षा और स्वतन्त्रता के मायने कुछ अधिक बदले-बदले से प्रतीत हो रहे हैं। वहाँ अधिकांश पत्थरबाजों को देशद्रोह और हिंसा की शिक्षा अशान्ति और उपद्रव का पाठ अब्दुल शाह गिलानी, शब्बीर शाह, मीरवाईज, उमर फारुक व यासीन मलिक जैसे अलगाववादी और आतंकी सरगनाओं की पाठशाला में बड़ी बेशर्मी और धृष्टता के साथ पढ़ाया जाता है। उन पत्थरबाजों के लिए स्वतन्त्रता के मायने महापुरुषों, बलिदानियों, महान् चिन्तकों के अनुसार नहीं, अपितु जो अलगाववादी आतंकवादी, देशद्रोही और कट्टरवादी स्वतन्त्रता की जो परिभाषा देते हैं, उन पत्थरबाजों के लिए स्वतन्त्रता की वही मनमानी परिभाषा मायने रखती है। वहाँ (कश्मीर में) राष्ट्रीय मूल्यों को जिस प्रकार दरकिनार किया जा रहा है। वहाँ (जम्मू कश्मीर में) स्वतन्त्रता की आड़ लेकर पाकिस्तानी आतंकी संगठनों तथा जम्मू कशमीर के अलगाववादी संगठनों के इशारे पर जिस प्रकार हिंसा का खेल खेला जा रहा है, उससे वहाँ के गुमराह पत्थरबाज युवकों के लिए स्वतन्त्रता के मायने ही बदल गए हैं। कशमीर में शिक्षा और स्वतन्त्रता दोनों का ही अलगावादियों द्वारा, आतंकियों द्वारा तथा भाड़े के पत्थरबाजों द्वारा बड़ी निर्लज्जता के साथ उपहास किया जा रहा है, यह निंदनीय है। यह दुष्कृत्य एक या दो वर्षों से नहीं, अपितु तीन दशकों से कशमीर में शिक्षा और स्वतन्त्रता के साथ खिलवाड़ किया जाता रहा है और देश की राजनीति व राजनेता इस खिलवाड़ को बेबसी से मूकदर्शक बन देखते रहे। आतंकवादियों और अलगाववादियों की खुशामद करते रहे, जिससे समूचा कशमीर आतंकवाद की आग में झुलसता रहा। एक वेदमन्त्र है, जो हमें राष्ट्र प्रेम की शिक्षा देता है।

''दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम"।

अर्थात् हे मातृभूमे! हम सब पर ईश्वर की इतनी कृपा हो, जिससे हम दीर्घायु प्राप्त करें और न केवल दीर्घायु प्राप्त करें, अपितु हम तेरी अखण्डता के लिए, तेरी रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दें। वेद, रामायण, महाभारत हमें राष्ट्रवाद की, मानवता की, विश्वबन्धुत्व की और परोपकार की शिक्षा देते हैं। जो तथाकथित आजादी की आड़ में देशद्रोह का खेल खेलते हैं, ऐसे लोग पूरी मानवता के दुश्मन तो हैं ही इसके साथ-साथ वे समाज में अराजकता के सूत्रधार भी हैं। ऐसे लोग स्वतन्त्रता के नाम पर और शिक्षा की आड़ में देश में रहकर देश के ही शत्रुओं का निर्माण कर रहे हैं। ऐसे लोगों से समाज व राष्ट्र को जितनी जल्दी हो सके, मुक्ति मिलनी चाहिए। हमारी स्वतन्त्रता राष्ट्र में समृद्धि लाने वाली हो, हमारी स्वतन्त्रता राष्ट्र की एकता और अखण्डता को दृढ़ता प्रदान करने वाली हो। इसके साथ-साथ हमारी शिक्षा हमें सच्ची स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने वाली हो, हमारी शिक्षा हमें राष्ट्रभक्ति का पाठ पढ़ाने वाली हो, हमारी स्वतन्त्रता और शिक्षा दोनों ही हम सबको मानवता के पथ पर चलाने वाली हों। शिक्षा और स्वतन्त्रता को जब संकुचित मानसिकता से परिभाषित किया जायेगा, तो उसका दुष्परिणाम देशद्रोह के रूप में, हिंसा और बगावत के रूप में आयेगा और फिर उनका सामना करते समय देश की राजनीति, राजनेता और राजनीतिक दल एक मत रहने की अपेक्षा बँटते नजर आएंगे जैसे कि जम्मू कश्मीर में अलगाववादियों, आतंकवादियों के खिलाफ कार्यवाही करते समय आज- कल राजनेताओं और उनके दलों की पैंतरेबाजी दिखाई दे रही है। इसलिए शिक्षा और स्वतन्त्रता के वास्तविक स्वरूप को समझकर उन्हें जीवन में अपनाने की आवश्यकता है।

❑❑

प्रश्नोपनिषद् की कथा

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- 09845058310)

अबके मास हम क्रमप्राप्त प्रश्नोपनिषद् की कथा को देखते हैं। इसमें कथा का अंश बहुत कम है और सम्भवतः यह, कथा न होकर, किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन है।

प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। पुरातन काल में महर्षि पिप्पलाद नाम से एक प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं। उनसे सम्बद्ध वेदशाखा के ब्राह्मण का यह उपनिषद् एक अंश है। सम्भवतः उनके शिष्यों द्वारा लिखे हुए इस उपनिषद् में पिप्पलाद के पास आये हुए छः ऋषियों के छः प्रश्न हैं, जो कि एक-एक अध्याय में उत्तर-सहित वर्णित हैं। इसी कारण से इस उपनिषद् का नाम 'प्रश्न' है। उनकी विषय-वस्तु अत्यन्त गूढ़ है और आज हम उसे ठीक से नहीं समझते। तथापि, जितने अंश को हम समझते हैं, उसका सार भी मैंने नीचे प्रस्तुत किया है।

एक बार, छः ऋषि, जो कि स्वयं ब्रह्म और वेदों में निष्ठा रखने वाले ज्ञानी थे, कुछ विषयों पर आपस में चर्चा करके किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाए। तब, महर्षि पिप्पलाद की ख्याति को सुनकर, वे महर्षि पिप्पलाद के आश्रम पर, गुरु के लिए हाथ में समिधाएं लेकर, पधारे। जैसे कि प्रथा थी, ऋषि ने उनको तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ, एक वर्ष के लिए आश्रम में वास करने को कहा। इस प्रकार गुरु का शिष्य को तुरन्त उपदेश न करने का, परन्तु शिष्यों को लम्बे समय तक आश्रम में वास कराने का कारण सम्भवतः यह था कि, एक तो, इससे शिष्य के संकल्प की परीक्षा हो जाती थी- यदि शिष्य अपने संकल्प में दृढ़ नहीं था, तो वह कुछ समय उपरान्त धैर्य छोड़कर चला जाता। दूसरे, सम्भवतः, इस काल में शिष्य गुरु और उनके विचारों से थोड़ा अवगत हो जाता होगा, अन्य शिष्यों के साथ वह भी कुछ सीख जाता होगा। यदि उसे गुरु की शिक्षा-पद्धति रुचिकर न लगती है, तो वह छोड़ के जा सकता था।

पिप्पलाद के आश्रम में आए ऋषि थे- सुकेशा भारद्वाज, सत्यकाम शैव्य, सौर्यायणी गार्ग्य, आश्वलायन कौसल्य, भार्गव वैदर्भि और कबन्धी कात्यायन। एक वर्ष पश्चात्, वे ऋषि के सामने उपस्थिति हुए। सबसे पहले कबन्धी ने अपना प्रश्न रखा, ''भगवन्! ये जीव-जन्तु रूपी प्रजा कहाँ से उत्पन्न होती है?''

महर्षि ने उसे उपदेश दिया कि सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति परमेश्वर ने प्रजा उत्पन्न करने की कामना की। उसने तप किया, जिससे एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। यह जोड़ा था रयि (धन) और प्राण (आदित्य) का। वस्तुतः, प्राण ही उपनिषद् का मुख्य विषय है। आगे-आगे ऋषि एक-एक करके ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं को प्राण का एक रूप बताते हैं। यहाँ तक कि रयि को प्राण का ही रूपान्तर बताते हैं। यह प्राण क्या है?- यह अस्पष्ट है। यहाँ अगले ही वाक्य में वे आदित्य को प्राण और रयि को सब मूर्त वस्तुएं बताते हैं। इससे प्रतीत होता है कि जो भी हम धन-रूप में अर्जित कर सकते हैं, जैसे भू-भाग, सोना-चाँदी, पशु आदि, उसे रयि कहा गया है। दूसरी ओर, आदित्य आदि को मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ तक कि जीवन-वायु प्राण को भी मनुष्य यत्न से नहीं प्राप्त कर सकता- वह परमात्मा की देन ही होती है।

इसी प्रकरण में वे एक महत्वपूर्ण उपदेश देते हैं- प्रजापति संवत्सर (वर्ष)-रूपी है। उसके दो अयन (जीवन-मार्ग) हैं- एक दक्षिण, दूसरा उत्तर। जो लोग इष्टापूर्ते = यज्ञ और परोपकार (= कुआं खुदवाना आदि) के कृत्यों को ही महान् समझते हैं और परिवार की कामना करते हैं, वे दक्षिणायन को प्राप्त होते हैं, जो कि पितृयाण हैं, जिससे वे चन्द्रलोक को प्राप्त कर पुनः पृथिवी पर जन्म लेते हैं। परन्तु जो तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या से अपने को ढूँढते हैं, वे आदित्य को

प्राप्त होते हैं। आदित्य ही प्राणों का आधार है। वहाँ पहुँच कर वे अमृत और अभय हो जाते हैं। परम पद को प्राप्त करके, वे वापस नहीं आते, अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यही उत्तरायण है। जैसा कि मैंने पूर्व के एक लेख में लिखा था, यहाँ पर भी हम मुक्तात्माओं का वास आदित्य पर बताया पाते हैं। और यज्ञ और परोपकार से मुक्ति नहीं प्राप्त होती- यह भी मेरे द्वारा पूर्व-वर्णित सन्देश पाते हैं। सभी उपनिषद् ये दो बातें बार-बार कहते हैं। खेद है कि इन्हें हम अपने पूर्वाग्रह के कारण समझ नहीं पाते हैं...।

अब विदर्भदेशीय भार्गव अपना प्रश्न रखता है, "भगवन्! कितने देव ऊपर कही प्रजा का धारण करते हैं? कितने इसको प्रकाशित करते हैं? इनमें से कौन वरिष्ठ है?"

पिप्पलाद बोले कि आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी (जीवों को धारण करते हैं), व वाक्-शक्ति, मन, चक्षु और श्रोत्र - ये जीवों को प्रकाशित करते हैं। इनमें से कौन वरिष्ठ है, इसको दर्शाने के लिए, वे एक उपमात्मक कथा सुनाते हैं- वाक् और उससे उपलक्षित सभी कर्मेन्दियाँ, मन और उससे सम्बद्ध अन्तःकरण के चार विभाग, चक्षु, श्रोत्र और अन्य सभी ज्ञानेन्द्रियाँ अपने को सबसे बड़ा मानने लगीं परन्तु उनमें से वरिष्ठ प्राण बोला, "मोह में मत पड़ो- मैं ही पाँच भाग में बंटकर इस शरीर को आश्रय देकर धारण किए हूँ।" तब प्राण ऊपर उठा, तो वे भी उठने लगीं; जब वह बैठा, तब वे सब बैठ गईं, जैसे कि मधुमक्खियों के राजा के साथ-साथ शेष मधुमक्खियाँ उड़ती या बैठती हैं। तब सब इन्द्रियों ने प्राण का लोहा माना और उसकी स्तुति की। यह कथा भी अन्य ग्रन्थों में पाई जाती है और मधुमक्खी वाली उपमा भी।

फिर कोसलदेशीय आश्वलायन पूछते हैं, "कहाँ से यह प्राण उत्पन्न होता है? कहाँ से यह शरीर में आता है? इस शरीर में विभक्त होकर कैसे स्थित है? कैसे शरीर से बाहर निकलता है? कैसे बाह्य जगत् को धारण करता है और कैसे अन्तरात्मा को?"

पिप्पलाद प्रश्नकर्ता को शाबाशी देते हुए कहते हैं, "तुमने कठिन प्रश्न पूछा है। क्योंकि तुम वेदादि का अध्ययन कर चुके हो, इसलिए मैं तुम्हें बताता हूँ। आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है। जिस प्रकार यह पुरुष की छाया उस में ही फैली होती है, इसी प्रकार प्राण मन के कृत्य से प्राप्त इस शरीर में फैल जाता है।" यहाँ 'आत्मा' शब्द से ब्रह्म का ग्रहण किया जाता है, परन्तु ब्रह्म ने सब उत्पन्न किया है- यह तो पहले प्रश्न में ही कह आए हैं। मेरे अनुसार यहाँ अर्थ है 'जीवात्मा'। और यहाँ कहे गए **'मनोकृतेन'**, और दसवें खण्ड के भाष्य में पढ़े **'यथासङ्कल्पितं लोकं नयति'** से यह अर्थ प्रचलित है कि मरण-समय में जीवात्मा जैसा संकल्प करता है, जहाँ जाने का विचार करता है, उसी शरीर, उसी स्थान को प्राप्त कर लेता है। यह तो वैदिक कर्मफल सिद्धान्त के पूर्णतया विरुद्ध है। यहाँ 'मन के कृत अथवा संकल्प' से यही समझना चाहिए कि जो कर्म आत्मा ने मन से संकल्प करके किए, उन्हीं से उसका अगला लोक निर्धारित होता है। जीवात्मा के तीन प्रकार के कर्म होते हैं- शारीरिक, वाचिक और मानसिक, परन्तु हम देख सकते हैं कि शेष दो का आरम्भ भी मन में ही होता है; इसलिए वे भी वस्तुतः मानसिक ही होते हैं। इस प्रकार उपनिषद् कह रहा है कि कर्मानुसार आत्मा शरीर में प्रवेश करती है और उसके साथ-ही-साथ, छाया की तरह अनुप्राणित हो जाता है। महर्षि दयानन्द ने हमें बताया है कि सर्गारम्भ में सूक्ष्म शरीर हमसे संलग्न हो जाता है, जो कि प्रलय अथवा मुक्ति पर ही छूटता है; सूक्ष्म शरीर का एक घटक प्राण है।

विस्तारभय से मैं इस प्रश्न के अन्य उत्तर नहीं दे रही हूँ। उनके लिए उपनिषद् अवश्य पढ़ें।

फिर गर्गगोत्रीय सौर्यायणी ने अपना प्रश्न रखा, "इस मनुष्य-शरीर में कौन देव सोते हैं, कौन जागते हैं, कौन स्वप्न देखता है, किसको सुख होता है और किसमें सब देव सम्यक्तया स्थित होते हैं?"

संक्षेप में, पिप्पलाद बताते हैं -

(१) सुप्तावस्था में सारी इन्द्रिय-देव मन में एकीभूत हो जाते हैं।

(२) उस अवस्था में प्राण की पाँच अग्नियाँ जागती रहती हैं और प्राणी के पाचन आदि कार्य चलते रहते हैं।

(३) स्वप्नावस्था में जीवात्मा अपनी महिमा का अनुभव करता है, अर्थात् वह ही स्वप्न देखता है, जैसा कि जागृत अवस्था में भी वही देखता है।

(४) जब वह जीवात्मा, तेज से अभिभूत होकर, गाढ़ निद्रा में पहुँचता है, तब वही सुख का अनुभव करता है।

(५) और ये सब देव परमात्मा में सम्प्रतिष्ठित होते हैं।

इस प्रकरण में पाँच प्राणों के विभिन्न कार्यों को और निद्रा स्वप्न स्थितियाँ आधुनिक विज्ञान से सम्पुष्ट हैं, जबकि प्राण के विषय में आधुनिक विज्ञान मौन है। इन वर्णनों के लिए भी उपनिषद् द्रष्टव्य है।

फिर शिवि के पुत्र सत्यकाम ने पूछा, "भगवन्! हमने सुना है कि जो कोई मृत्युपर्यन्त ओम् का जप करता है, वह अत्यन्त सद्गति को प्राप्त करता है। वह लोक कौन-सा है, जिसे वह प्राप्त करता है?"

इस पाँचवे प्रश्न पर पिप्पलाद एक रहस्यमय उपदेश देते हैं। वह है- जो मनुष्य त्रिमात्रिक ओ३म् की एक मात्रा से प्रभु का ध्यान करता है, उसे ऋग्वेद शीघ्र ही मनुष्य लोक पहुँचा देता है। वहाँ तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न होकर, वह महिमा को प्राप्त होता है। सम्भवतः ऋग् से यहाँ विज्ञान अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

जो मनुष्य दो मात्रा से परमात्मा का ध्यान करता है, उसे यजु के मन्त्र चन्द्रलोक पहुँचा देते हैं, जहाँ वह विशेष सिद्धियों का अनुभव करके, पुनः पृथिवीलोक में जन्म लेता है। यह चन्द्रलोक पर आत्मा का वास कैसा होता है, इसके विषय में कुछ और वर्णन नहीं है। चन्द्रलोक पर स्वर्ग होने का उल्लेख अन्यत्र भी प्राप्त होता है। यहाँ, यदि शब्दों को ऐसे-का-ऐसा ही समझा जाए, तो यह वास अशरीरी होगा, जिसके कारण आत्मा को दुःख कम प्राप्त होते होंगे। फिर उसमें अपनी शक्तियाँ भी उजागर होती होंगी, जिनको यहाँ **'विभूति'** कहा गया है। और अशरीरी सृष्टि होने के कारण विज्ञान उनको ढूँढने में असमर्थ होगा। तथापि, अन्य प्रमाणों के अभाव में, उपर्युक्त अटकलें ही मानी जा सकती हैं। सम्भवतः, यजुः से यहाँ यज्ञ-कर्म ग्रहण करना चाहिए।

जो मनुष्य तीन मात्रा से ओ३म् का ध्यान करता है, वह तेज से सम्पन्न होकर सूर्यलोक को प्राप्त होता है। जिस प्रकार साँप अपनी केंचुली त्याग देता है, वैसे ही यह आत्मा अपने पापों से मुक्त हो जाता है। उसे सामवेद के मन्त्र ऊपर ब्रह्मलोक ले जाते हैं, जहाँ वह जीवों से कहीं अधिक उत्कृष्ट परमातमा के साक्षात् दर्शन करता है। सम्भवतः, साम से यहाँ उपासना का ग्रहण है।

ओ३म् पर ध्यान के विषय में भी सभी उपनिषद् ऐकमत्य हैं कि यही सबसे परम आलम्बन है। मुमुक्षु को इसी का आश्रय लेना चाहिए।

अन्त में, भरद्वाज का पुत्र सुकेशा पूछता है, "भगवन्! कोसल देश के राजपुत्र हिरण्यनाभ ने एक बार मेरे पास आकर मुझसे पूछा था कि क्या तुम सोलह कला वाले पुरुष को जानते हो? तब मैंने उससे कहा था कि नहीं, ऐसा पुरुष मैं नहीं जानता। और जो मैं जानता होता, तो तुम्हें क्यों न बताता? झूठ बोलने वाला अवश्य ही समूल नष्ट हो जाता है। इसलिए मैं झूठ कदापि नहीं बोल सकता। ऐसा कहने पर वह राजकुमार चुपचाप रथ में बैठ के चला गया। इसलिए मैं आपसे पूछता हूँ कि वह सोलह कला वाला पुरुष कौन है?" (यहाँ सत्य-वचन का प्रचीन-काल में अत्यन्त महत्व स्पष्ट है।)

इस पर पिप्पलाद मुनि ने एक दुर्लभ उपदेश दिया, जो कि अनेकों बार उद्धृत किया जाता है, क्योंकि यह कहीं और आज पाया नहीं जाता। महर्षि दयानन्द ने भी यजुर्वेद के मन्त्र .... **त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी।।** यजु. ३२/५।। की व्याख्या में 'षोडशी'=सोलह कला वाले परमात्मा का यहीं से वर्णन दिया है। पिप्पलाद ने कहा कि वह परमात्मा ही है, जिसमें ये १६ कलाएं

शेष पृष्ठ १३ पर

ओहो! वह समर्पण भाव (2)
(राजेशार्य आट्टा, मो०:-०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए सबसे अधिक हानिकारक कोई होता है, तो वह होता है स्वार्थी व्यक्ति। क्योंकि **'स्वार्थी दोषं न पश्यति'** (स्वार्थ में अन्धा हुआ व्यक्ति दोष नहीं देखता)। यह स्वार्थी विद्वान्, बलवान्, धनवान् आदि कोई भी हो सकता है। निश्चित रूप से वे विद्वान् ही रहे होंगे, जिन्होंने मांसाहार के लालच में वैदिक ऋषियों को मांसाहारी बताकर यज्ञों में पशु-बलि का प्रचलन किया। अपनी वासनापूर्ति के लिए प्राचीन ऋषियों को दुराचारी प्रचारित करते हुए पुराण ग्रन्थ लिखे। सदाचारी कृष्ण को परस्त्रियों से रंग-रलियाँ मनाने वाला लिखने वाले भी कोई अनपढ़ तो नहीं थे। अंग्रेजों ने जिस मैक्समूलर से आर्यों को विदेशी आक्रमणकारी प्रचारित करवाया, वह भी जर्मनी का प्रोफेसर था और स्वतंत्र भारत में जिन्होंने इस भ्रामक विचार को जारी रखा, वे भी विद्वान् थे, सत्य को जानते थे। पर जब स्वार्थ (धन व पद का लोभ) आया, तो आत्मा के प्रतिकूल आचरण करने लगे। ऋषि दयानन्द के आद्यपट्ट शिष्य कहलाने में गौरव का अनुभव करने वाले महान् विद्वान् पं० भीमसेन शर्मा का आचरण भी कुछ ऐसा ही रहा।

डॉ० भवानीलाल भारतीय के अनुसार पं० भीमसेन शर्मा हिन्दी-संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित व ऋषि दयानन्द के वेतनभोगी शिष्य थे। ऋषि दयानन्द का पुस्तकें लिखने, छापने आदि का बहुत सा काम ये देखते थे। वैदिक मत की पुष्टि व वैदिक मत विरुद्ध मन्तव्यों के खण्डन में इन्होंने खूब लिखा। नौ उपनिषदों का भाष्य, मनुस्मृति व गीता की संस्कृत टीका, कतिपय गृह्यसूत्रों की टीका, व्याकरण के ग्रन्थ, कर्मकाण्ड के प्रतिपादक ग्रन्थ व कुछ खण्डनात्मक ग्रन्थ भी लिखे थे। यद्यपि महर्षि दयानन्द इनके कार्य से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने अपने पत्रों में पं० भीमसेन को अज्ञानी, प्रमादी तथा कर्त्तव्य पालन में अक्षम लिखा है, तथापि काम चलाने के लिए इन्हें रख रहे थे।

महर्षि की मृत्यु के लगभग दस वर्ष बाद जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह ने पं० भीमसेन शर्मा को कुछ लालच (१००० रु० दक्षिणा का लालच) दिया, तो वे शास्त्रों में हिंसक पशुओं का वध कर उनका मांस-भक्षण का विधान कर बैठे। जबकि पं० गंगाप्रसाद एम. ए. को यह लालच धर्म से न डिगा सका। पं० लेखराम ने पं० भीमसेन को फटकारा, तो बात सीध में आई। पं० भीमसेन ने महाराजा को स्पष्ट कह दिया कि मांसभक्षण पाप है, हानिकारक पशुओं का मांस भी अभक्ष्य है। बस इसी बात पर दक्षिणा आधी (५०० रु०) मिली।

पं० लेखराम तो ६ मार्च, १८९७ को मतान्ध हत्यारे के छुरे की भेंट चढ़ गये। कुछ समय बाद पं० भीमसेन पुनः स्वार्थ (लोभ) के वशीभूत हो गये। चुरु (राजस्थान) के सेठ माधव प्रसाद खेमका ने उनसे ज्योतिष्टोम यज्ञ करवाया। मोटी दक्षिणा के लालच में आकर पं० भीमसेन इस यज्ञ में कुछ ऐसी अवैदिक विधियाँ कराने के लिए तत्पर हो गये, जिनका आर्य सिद्धान्तों में सख्त विरोध था। ऋषि दयानन्द सब ग्रन्थों में मिलने वाले पशु-हिंसा विषयक विधान को अवैदिक व त्याज्य मानते थे। पं० भीमसेन ने इस यज्ञ में आटे की पिष्टी (पीठी) से बनाये भेड़ तथा मेंढा का प्रतीकात्मक बलिदान किया। इन्हें काठ की तलवार से काटा। पं० भीमसेन के इस अवैदिक आचरण की निन्दा हुई और इन्हें स्पष्टीकरण करने के लिए कहा गया।

अपनी भूल मानना तो दूर रहा, वे अपनी बात पर अड़ गये। धीरे-धीरे अनेक अवैदिक मन्तव्यों, जन्मना

वर्णव्यवस्था, मृतकश्राद्ध आदि का समर्थन करने लगे। महात्मा मुन्शीराम ने उनका विरोध किया और उन्हें शास्त्रार्थ की चुनौती दी। १९०१ ई० में दिल्ली में तुलसीदास स्वामी नं पं० भीमसेन के साथ शास्त्रार्थ किया और उनके इस दावे का युक्तिपूर्वक खण्डन किया कि मृतकश्राद्ध का वेदों में विधान है। पं० तुलसीराम ऐसे ऋषिभक्त थे कि देवनागरी स्कूल मेरठ में संस्कृत अध्यापन करते समय इन्होंने सनातन धर्म सभा के तत्वावधान में पौराणिक मान्यताओं का प्रचार करने वाले प्रसिद्ध साहित्यकार पं० अम्बिकादत्त व्यास की युक्तियों का प्रमाणपूर्वक खण्डन किया था। देवनागरी विद्यालय के मैनेजर ने जब उनसे आर्यसमाज में जाने का निषेध किया, तो वे सेवामुक्त होकर स्वतंत्र रूप से वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न हो गये। अपने जीवन में इन्होंने सैकड़ों शास्त्रार्थ किये। १८९३ में पं० भीमसेन शर्मा ने इन्हें अपने प्रयाग स्थिति सरस्वती मंत्रालय के मैनेजर पद पर नियुक्त किया। ये उनके सहयोगी बनकर 'आर्य सिद्धान्त' में लेख लिखने लगे, पर जब यही पं० भीमसेन वैदिक सिद्धान्तों से डिगने लगे, तो उन्हें शास्त्रार्थ के लिए भी ललकारा। आगरा में (१९०१ ई.) भी तुलसीराम स्वामी व पं० कृपाराम ने उनसे शास्त्रार्थ किया। इसमें भी पं० भीमसेन ने पौराणिक मान्यताओं का समर्थन किया और आर्य समाज से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। पं० कृपाराम ने उन्हें ललकारते हुए कहा- "तुम जहाँ-जहाँ मृतकश्राद्ध के पक्ष में भाषण देने जाओगे, मैं भी वहीं-वहीं इसके खण्डन में व्याख्यान दूँगा। सत्य के निर्णय के लिए कमर कसकर मैदान में आ जाइये, मैं अभी दीक्षा लेकर वेशभूषा बदलने को तैयार हूँ।"

आर्यसमाज व वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध लिखते-बोलते पं० भीमसेन ने कभी यहाँ तक कह दिया- "मैं आर्य समाज की ईंट से ईंट बजा दूँगा।" पं० कृपाराम से ये शब्द सहन नहीं हुए। वे भीमसेन को ललकारते हुए बोले- "आर्यसमाज की ईंट से ईंट बजाने से पूर्व तुम अपने रेत के बने भवन की सुधि तो लो। जब तक मेरे प्राणों में प्राण और तन में श्वास है, आर्यसमाज का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। किसी की क्या शक्ति है कि इस ओर वक्र दृष्टि से देख भी सके।"

पं० भीमसेन पं० कृपाराम की तरह स्वामी दर्शनानन्द तो नहीं बन सके, पर उन्होंने अपना वैदिक सिद्धान्त वाला पहला सारा साहित्य पौराणिक रंग में रंग दिया। क्योंकि सनातनी शिविर में मान-सम्मान व मोटी दक्षिणा आदि की सुविधाएँ थीं और सुविधा सिद्धान्त (सत्य) को सिर नहीं उठाने देती। काशी के विद्वान् आचार्य गदाधर ने किसी आर्य के पूछने पर यही तो कहा था कि सत्यार्थप्रकाश में कोई बात गलत नहीं लिखी है, पर मैं यह सार्वजनिक रूप से नहीं कह सकता, क्योंकि फिर मुझे यह बग्घी लेने नहीं आएगी, न उत्तम दक्षिणा मिलेगी। तभी तो कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है-

दौरात्म्य ही अब लोक रुचि पर हो रहा है सब कहीं।
हा स्वार्थ ! तेरी जय, अरे तू क्या करा सकता नहीं।।

स्वामी दर्शनानन्द के विषय में (१९०५ ई०) पौराणिक दल में यह समाचार फैला कि वे आर्यसमाज को छोड़कर सनातन धर्म की दीक्षा ले रहे हैं। इसका कारण था कि स्वामी जी का आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व उत्तर प्रदेश सभा से कुछ मतभेद हो गया था और यह प्रायः सभी को विदित भी हो गया था। बस इसी बात से पौराणिक खुशी मना रहे थे। संयोग से स्वामी जी उन्हीं दिनों कहीं सनातन धर्म का उत्सव होता देखकर सुनने के लिए मञ्च पर जा बैठे।

सनातन धर्म सभा के मन्त्री ने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए घोषणा कर दी कि आज आर्यसमाज के दिग्गज विद्वान् पधारे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि वे आज सनातन धर्म की दीक्षा का पदार्पण करेंगे।

मन्त्री जी का यह कथन सुनकर स्वामी जी ने कुछ समय माँगा और अपनी बात इस प्रकार से आरम्भ की- "भूलें हैं वे लोग, जो ऋषि दयानन्द की गोदी में पले हुए किसी भी विद्वान् से यह आशा करते हैं कि वह अपने सिद्धान्तों से विचलित हो सकेगा। एक आर्य

पुरुष आदि से लेकर अन्त तक आर्य ही रहेगा। उसे अपने सिद्धान्तों से कोई हिला नहीं सकता।

यह कहकर वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि करते हुए व्याख्यान जारी कर दिया। जब उन्हें व्याख्यान बन्द करने के लिए कहा गया, तो बोले- 'अभी मेरा समय है' कहकर उन्होंने अपना भाषण चालू रखा।

आर्यसमाज के इतिहास मर्मज्ञ प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने 'स्वामी दर्शनानन्द' में लिखा है- "सभाओं की कार्य पद्धति व नीति की समालोचना करने के कारण पंजाब के उर्दू साप्ताहिक 'प्रकाश' (महाशय कृष्ण का पत्र) व 'सद्धर्म प्रचारक' में स्वामी जी के विरोध में कई लेख निकले। पंजाब प्रतिनिधि सभा ने आपके लिए अपनी समाजों की वेदी भी बन्द कर दी। आपको तब कई प्रकार के विरोध का सामना करना पड़ा। आप भी निश्चय के बड़े पक्के थे। जैसे भी बन पड़ा, आपने वैदिकधर्म का प्रचार एक दिन के लिए भी बन्द न किया।"

'आर्यवीरों का दर्शन' पुस्तक के लेखक ने बड़ा सुन्दर लिखा है - "यदि कोई पेटार्थी/स्वार्थी होता, तो निश्चय ही वह ऐसे कठोर व्यवहार से, जो आपके साथ किया गया, आर्यसमाज का शत्रु बन जाता। कहा जाता है कि जब स्वामी जी पर आर्यसमाजों के द्वार बन्द किए गये, तो स्वामी जी ने कहा था कि तुम मुझ पर प्रचार का द्वार बन्द नहीं कर सकते। मैं आर्यसमाज की शिक्षा व ऋषि दयानन्द का सन्देश बाजारों तथा गलियों में खड़ा होकर मन्दिरों तथा गिरजों में जाकर मनुष्य मात्र तक पहुँचाऊँगा।"

आर्यो! इस निर्लिप्त सन्यासी के बलिदान की कीमत कोई चुका सकता है क्या? जो परायों से भिड़ता और अपनों से अपमानित होता हुआ भी अंतिम सांस तक आर्यसमाज के लिए जीया। मृत्यु से मात्र छह घण्टे पूर्व भी जो घोषणा कर रहा था- ''जिसे शास्त्रार्थ करना हो, अभी कर ले, फिर न कहना (कि आर्य समाज पीछे है)।''

ऋषि दयानन्द के ३७ व्याख्यान सुने थे स्वामी दर्शनानन्द ने, और ३७ वर्ष तक आर्यसमाज का कार्य किया। फिर भी यह महान् संन्यासी कहता है कि (मृत्यु के बाद) ऐसे शरीर को जिससे किसी का उपकार न हुआ हो, कुत्तों के सामने डाल दो। क्या इससे बड़ा भी कोई संन्यास (त्याग) होगा? सबसे बड़ी बात तो यह है कि समाज हित के लिए ये व्यक्तिगत मान-सम्मान (अहंभाव) को तिलांजलि दे देते थे। आर्यसमाज सम्भल के वार्षिकोत्सव पर आर्यसमाज के अनुभवहीन युवा अधिकारियों ने स्वामीजी के साथ दुर्व्यवहार किया। स्वामी जी ने उन्हें समझाया, पर वे नहीं माने। स्वामी जी ने कहा- ''अच्छा, यदि आप लोग ऐसी ही मनमानी करेंगे, तो मैं अगली बार आपके उत्सव पर नहीं आऊँगा।''

सम्भल में शास्त्रार्थ होते ही रहते थे। अगले वर्ष पर मौलवियों ने पता लगा लिया कि कोई शास्त्रार्थ महारथी सम्भल नहीं पहुँच रहा। उन्होंने शास्त्रार्थ का चैलेंज दे दिया। समाज के वृद्ध प्रधान जी ने उन्हीं युवकों से कहा- तुम्हारी भूल के कारण स्वामी जी तो पधारे नहीं। अब शास्त्रार्थ कौन करेगा? आप लोगों को जाकर स्वामी जी से विनती करनी चाहिए थी। भूल तो आपकी है।

इधर स्वामी दर्शनानन्द जी ने अपने गुरुकुल के किसी अध्यापक से सम्भल उत्सव के विषय में पूछा, तो वे बोले- 'पत्र तो उनका आया था, पर आपने ही तो कहा था कि वे अपनी भूल का सुधार नहीं करते। इसलिए मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा।' इसलिए आपको पत्र देने का कोई लाभ ही न था।

स्वामी जी ने कहा- "अरे, सो तो ठीक है, परन्तु प्रश्न किसी के आदर-अनादर या भूल सुधार का नहीं है। प्रश्न है आर्यसमाज की प्रतिष्ठा का। वहाँ शास्त्राार्थ की चुनौती मिल गई तो फिर क्या होगा?" यह कहा और सम्भल को चल दिये। वहाँ जाकर दरी पर पीछे कम्बल ओढ़े भीड़ में बैठ गये। जब शास्त्रार्थ के लिए किसी मौलवी ने चुनौती दोहरा दी और कहा- 'आओ,

शेष पृष्ठ २५ पर

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने डाली थी स्वतंत्रता संग्राम की नींव

(विवेकप्रियार्य,मथुरा-उ.प्र.,मो0:-09७1991054७)

महर्षि दयानंद सरस्वती ने राष्ट्रवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज शिक्षा, समाज-सुधार एवं राष्ट्रीयता का आन्दोलन था। स्वतंत्रता के पूर्वकाल में हिंदूसमाज के नवजागरण और पुनरुत्थान आंदोलन के रूप में भी आर्यसमाज सर्वाधिक शक्तिशाली आवाज था। यह पूरे पश्चिम और उत्तर भारत में सक्रिय था तथा सुप्त हिन्दू जाति को जागृत करने में संलग्न था। दुनिया में आर्यसमाज एकमात्र ऐसा संगठन है, जिसके द्वारा धर्म, समाज और राष्ट्र तीनों के लिए अभूतपूर्व कार्य किए गए हैं। आर्यसमाज किसी मत, मजहब व पंथ का नाम नहीं है, अपितु आर्यसमाज एक सुधार, एक आन्दोलन का नाम है। आर्यसमाज के अनुयायियों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। भारत के ८५ प्रतिशत स्वतंत्रता संग्राम सेनानी आर्यसमाज ने पैदा किये थे। स्वदेशी आन्दोलन का मूल सूत्रधार ही आर्यसमाज था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर भी आर्यसमाज के प्रभाव से ही स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ हुआ था। महर्षि दयानंद सरस्वती आधुनिक भारत के धार्मिक नेताओं में प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया। स्वामी जी ने धर्म परिवर्तन कर चुके लोगों को पुनः अपने वैदिक धर्म में वापसी की प्रेरणा देकर शुद्धि आंदोलन चलाया था। आर्यसमाजियों ने सबसे बड़ा काम जातिव्यवस्था को तोड़ने और सभी हिन्दुओं में समानता का भाव जागृत करने का किया। भारतीयों में भारतीयता को अपनाने, प्राचीन संस्कृति को मौलिक रूप में स्वीकार करने, पश्चिमी प्रभाव को विशुद्ध भारतीयता यानी वेदों की ओर लोटो के नारे के साथ समाप्त करने तथा सभी भारतीयों को एकताबद्ध करने के लिए प्रेरित करने का काम आर्यसमाज ने किया। आर्यसमाज मानव मात्र की उन्नति चाहने वाला संगठन है, जिसका उद्देश्य शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति करना है। वह अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति मानता है।

भारत को आजाद कराने में महर्षि दयानन्द सरस्वती का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महर्षि दयानन्द ही वह पहले भारतीय हैं, जिन्होंने अंग्रेजों के साम्राज्य में सर्वप्रथम स्वदेशी राज्य की माँग की थी। वे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं- "कोई कितना ही करे जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि, उत्तम होता है।'' सन् १८७० में लाहौर में विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। स्टाम्प ड्यूटी व नमक के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा गया। परिणामस्वरूप आर्यसमाज के अनेक कार्यकर्ता व नेता स्वतन्त्रतासंग्राम में देश को आजाद करवाने के लिए कूद पड़े। सन् १८५७ के पश्चात् की क्रांति के जन्मदाता महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके शिष्य पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा (जो क्रांतिकारियों के गुरु थे), प्रसिद्ध क्रांतिकारी विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, सेनापति बापट, मदनलाल ढींगरा, रामप्रसाद बिस्मिल, गोपालकृष्ण गोखले, सरदार भगत सिंह इत्यादि शिष्यों ने स्वाधीनता आन्दोलन में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। इंग्लैण्ड में भारत के लिए जितनी क्रांति हुई, वह श्याम जी कृष्ण वर्मा के "इण्डिया हाउस" से ही हुई। सरदार भगत सिंह तो जन्म से ही आर्यसमाजी थे। इनके दादा सरदार अर्जुन सिंह विशुद्ध

आर्यसमाजी थे और इनके पिता श्री किशन सिंह भी आर्यसमाजी थे। गाँधी जब अफ्रीका से लौटकर भारत आये, तब उनके ठहराने का किसी में साहस न था। तब आर्यसमाजी नेता स्वामी श्रद्धानंद ने ही उनको गुरुकुल काँगड़ी में ठहराया था और महात्मा की उपाधि से सुषोभित भी स्वामी श्रद्धानंद जी ने ही किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व लगभग सभी स्थानों में ऐसी स्थिति थी कि कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ताओं को यदि कहीं आश्रय, भोजन, निवास आदि मिलता था, तो वह किसी आर्य के घर में ही मिलता था। जब-जब सनातन धर्म पर कोई आक्षेप लगाए गये, महपुरुषों पर किसी ने कीचड़ उछाला, तो ऐसे लोगों को आर्यसमाज ने ही जवाब देकर चुप किया है। हैदराबाद निजाम ने सांप्रदायिक कट्टरता के कारण हिन्दू मान्यताओं पर १६ प्रतिबंध लगाए थे, जिनमें धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक रीतिरिवाज सम्मिलित थे। सन् १९३७ में पंद्रह हजार से अधिक आर्यसमाजी जेल गए और तीव्र आंदोलन किया, कई शहीद हो गए। निजाम ने घबराकर सारी पाबंदिया हटा लीं, जिन व्यक्तियों ने आर्यसमाज के द्वारा चलाये आंदोलन में भाग लिया, कारागार गए उन्हें भारत सरकार द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों की भांति सम्मान देकर पेंशन दी जा रही है। अमृतसर (पंजाब) में कांग्रेस का अधिवेशन करवाने का साहस अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी में ही था। उस समय की सिथति को देखकर किसी भी कांग्रेसी में इतना साहस न था कि जो सम्मुख आता और कांग्रेस का अधिवेशन करवा सकता। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता थे, उनकी देशभक्ति किसी से तिरोहित नहीं। सन् १९८३ में दक्षिण भारत मीनाक्षीपुरम में पूरे गाँव को मुस्लिम बना दिया गया था। शिव मंदिर को मस्जिद बना दिया गया था। सम्पूर्ण भारत से आर्यसमाज के द्वारा आंदोलन किया गया और वहाँ जाकर हजारों आर्यसमाजियों ने शुद्धि हेतु प्रयास किया और पुनः सनातन धर्म में सभी को दीक्षित किया, मंदिर की पुनः स्थापना की। कश्मीर में जब हिंदुओं के मंदिर तोड़ना प्रारम्भ हुआ, तो उनकी ओर से भी आर्यसमाज ने प्रयास किया और शासन से १० करोड़ का मुआवजा दिलवाया। स्वतन्त्रता आंदोलनकारियों के सर्वेक्षण के अनुसार स्वतन्त्रता के लिए ८०-८५ प्रतिशत व्यक्ति आर्यसमाज के माध्यम से आए थे। इसी बात को काँग्रेस के इतिहासकार डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने भी लिखा है।

❑❑

पृष्ठ ८ का शेष

चक्र के अरे की तरह स्थित हैं। वे कलाएं हैं- प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम। यह पदार्थों की अत्यन्त विचित्र सूची लगती है। इन का महत्व सम्भवतः आज बिरले ही समझते होंगे। इस विषय पर अवश्य ही अन्वेषण अपेक्षित है।

उपदेश पाकर कृत्कृत्य हुए छः मुमुक्षुओं ने महर्षि पिप्पलाद को भूरि-भूरि प्रणाम किया और कहा, “आप ही हमारे पिता हैं, जिसने हमको विद्या के दूसरे पार पहुँचाया।” इससे ज्ञात होता है कि आध्यात्मिक गुरु का भारतवर्ष के वासी सदा से ही कितना आदर करते आए हैं, क्योंकि यह विद्या अतीव दुर्लभ होती है और उसको सही-सही बताने वाले और भी कम होते हैं-

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य
लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।
कठ. ।।२/७।।

इस प्रकार प्रश्नोपनिषद् दुर्लभ ज्ञान का भण्डार है और सब अध्यात्म-जिज्ञासुओं के द्वारा पठितव्य है। जबकि इसके कुछ अंश पूर्णतया आज समझे नहीं जाते, तथापि इसमें अन्य इतने महत्वपूर्ण अंश हैं कि इसकी उपेक्षा नहीं का जा सकती। मैंने यहाँ केवल दिग्दर्शन-मात्र दिया है। सम्पूर्ण उपनिषद् आप अवश्य पढ़ें।

❑❑

"योगेश्वर कृष्ण का युद्ध भूमि में अर्जुन को दिया गया आत्मज्ञान विषयक प्रेरणादायक व ज्ञानवर्धक वेदानुकूल उपदेश"

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून,मो०:-०९४१२९८५१२१)

भारत के इतिहास में रामायण एवं महाभारत ग्रन्थों का विशेष महत्व है। यह दोनों सत्य इतिहास के ग्रन्थ हैं। दुःख है कि स्वार्थ बुद्धि के कुछ लोगों ने इनमें बड़ी मात्रा में प्रक्षेप किये हैं। आर्यसमाज शास्त्रों की उन्हीं बातों को स्वीकार करता है, जो बुद्धिसंगत, व्यवहारिक, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से रहित, पूर्वापर प्रसंग के अनुरूप, सृष्टिक्रम और देश, काल के अनुरूप हों। इस दृष्टि से आर्यसमाज के विद्वानों ने इन ग्रन्थों के प्रक्षेप से रहित अनेक ग्रन्थों की रचना व सम्पादन किया है। इस क्रम में कीर्तिशेष स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने रामायण एवं महाभारत के विशिष्ट संस्करण तैयार किये जो आज भी आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध प्रकाशक 'विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६' से उपलब्ध हैं। रामायण पर अनेक अन्य विद्वानों ने भी कार्य किया है। कुछ विद्वान् हैं- पं. आर्यमुनि जी और महात्मा प्रेमभिक्षु जी। इनके संस्करण भी आर्यसमाज के प्रकाशकों से उपलब्ध हैं। अन्य भी कुछ विद्वान् हैं, जिनके रामायण पर संस्करण उपलब्ध होते हैं। महाभारत पर पं. सन्तराम जी ने शुद्ध महाभारत नाम से एक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन पहले दयानन्द संस्थान, दिल्ली से हुआ था व उसके बाद दो-तीन खण्डों में मथुरा से सत्य प्रकाशन द्वारा तपोभूमि मासिक पत्रिका के विशेषांक रूप में किया गया। हमें इनमें से अनेक ग्रन्थों को पढ़ने का सुअवसर मिला है। पाठक चाहें, तो इनका लाभ उठा सकते हैं। हमारे पौराणिक प्रकाशकों के इन दोनों ग्रन्थों के संस्करण प्रक्षेपरहित न होने से उनकी महत्ता इसलिये कम है कि पाठकों को सत्य व असत्य दोनों प्रकार की घटनाओं को पढ़ना पड़ता है और वह अपने विवेक से सत्यासत्य का निर्णय नहीं कर पाते, जिससे अन्धविश्वास व पाखण्ड फैलता है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' महाभारत का एक भाग है। इसके दूसरे अध्याय में योगेश्वर श्रीकृष्ण जी का वह उपदेश भी है, जो उन्होंने अपने शिष्य व मित्र अर्जुन को महाभारत युद्ध की रणभूमि कुरुक्षेत्र में दिया था। आज हम उसी आत्मज्ञान विषयक श्रीकृष्ण जी के उपदेश का कुछ भाग भाषा में प्रस्तुत कर रहे हैं। गीता में कृष्ण जी द्वारा अर्जुन को दिया गया यह उपदेश संजय द्वारा धृतराष्ट्र के पूछने पर उन्हें सुनाया गया था। श्री कृष्ण जी ने अर्जुन का मोह व भ्रम दूर करने के लिए कहा है कि हे अर्जुन! निर्बलता को मत प्राप्त हो। तुझ में यह निर्बलता उचित प्रतीत नहीं होती। अपने हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग दे। हे शूरवीर! दुर्बलता त्यागकर खड़ा हो जा। अर्जुन ने कृष्ण जी को कहा कि हे शत्रुघातिन् मधुसूदन (श्रीकृष्ण)! मैं पूजा के योग्य भीष्म पितामह और अपने गुरु द्रोणाचार्य के सामने खड़ा होकर युद्ध में बाणों से कैसे लड़ूँगा। अर्जुन ने श्री कृष्ण जी को युद्ध न करने के अन्य अनेक कारण भी गिनाये। उनका समाधान करते हुए श्रीकृष्ण जी ने कहा कि तू अशोचनीयों का शोक करता है और अज्ञानियों के जैसी बातें करता हैं। बुद्धिमान् लोग मरों और जीवितों का शोक नहीं किया करते। यह नहीं है कि मैं और तू और ये राजा लोग कभी न थे, और न यह है कि हम सब इसके पश्चात् न होंगे। कृष्ण जी अर्जुन को समझा रहे हैं कि सबका जीवात्मा अजर व अमर होने से हर काल में विद्यमान रहता है।

कृष्ण जी ने अर्जुन को कहा कि जिस प्रकार प्राणी के इस देह में बालकपन, जवानी और बुढ़ापे की अवस्थायें होती हैं, वैसे ही मृत्यु होने पर उसे दूसरे देह की प्राप्ति भी होती हैं। धीर पुरुष अपने देह के प्रति कभी मोह व भय नहीं करते। हे कुन्तीपुत्र भरतवंशी! इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्ध, शब्द व स्पर्श आदि तो शीत्-ऊष्ण

व सुखःदुःख देने वाले हैं और यह आनी-जानी वस्तु हैं अर्थात् अनित्य हैं। उनको तू सहन कर। हे पुरुषार्थियों में श्रेष्ठ अर्जुन! सुख दुःख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रियों के विषय सताते नहीं हैं, वही पुरुष अमर होने को समर्थ है। असत् का भाव, सत्ता व अस्तित्व नहीं होता और सत् वस्तुओं का अभाव नहीं होता। तत्वदर्शियों ने सत् और असत् दोनों को यथार्थ स्वरूप में देख व जान लिया है। कृष्ण जी कहते हैं कि जिस ईश्वर से सृष्टि का यह फैलाव हुआ है, उसे तू अविनाशी जान। कृष्ण जी कहते हैं कि इस अविनाशी जीवात्मा का कोई विनाश नहीं कर सकता। नित्य, अविनाशी, शरीरधारी, अतीन्द्रिय जीवात्मा के यह देह व शरीर अन्त वाले अर्थात् नश्वर हैं। इसलिये हे भरतवंशी! तू युद्ध कर। हे अर्जुन ! जो मानव शरीर में विद्यमान जीवात्मा को मारने वाला समझता है और जो इस जीवात्मा को मारा गया समझता है, वे दोनों ठीक नहीं समझते। वह अज्ञानी हैं। क्योंकि न यह जीवात्मा किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा ही जाता है। यह जीवात्मा न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह होकर फिर न होगा, ऐसा नहीं है। यह जीवात्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और प्राचीन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह मारा नहीं जाता अर्थात् इसका अस्तित्व बना रहता है।

श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को कहा कि हे पार्थ! (अर्थात् पृथा के पुत्र) जो इस अजन्मा, अमर, अविनाशी जीव को नित्य जानता है, वह पुरुष क्यों कर किसको मरवाता और और किसको मारता है? किन्तु जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार कर दूसरे नवीन वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है, ऐसे ही देहधारी पुराने देहों को त्यागकर अन्य नये देहों को पा लेता है। जीवात्मा को शस्त्र काटते नहीं हैं, इसको अग्नि जला नहीं सकती। जल इसे गला नहीं सकता और वायु जीवात्मा को सुखाती नहीं है। यह आत्मा अच्छेद्य अर्थात् न कटने वाला, न जलने वाला, न गलने वाला और न सूखने वाला है। यह आत्मा सनातन अचल, स्थिर, सर्वत्र पहुँचने वाला और नित्य है। मनुष्य का जीवात्मा इन्द्रियों का विषय नहीं होने से अव्यक्त है। यह चित्त का विषय न होने से अचिन्त्य है, विकास को प्राप्त न होने से यह अविकारी कहा जाता है। आत्मा ऐसा है, इस आत्मा को इस प्रकार का जानकर अर्जुन, तू शोक नहीं कर सकता। यदि तू इस जीवात्मा को नित्य-नित्य उत्पन्न होने वाला और नित्य-नित्य मरनेवाला भी समझता है, तो भी हे अर्जुन! तू इसका शोक नहीं कर सकता। श्री कृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन ! उत्पन्न हुए मनुष्य की मृत्यु अवश्यम्भावी है, मरे हुए मनुष्य की जीवात्मा का जन्म भी अटल है। जिसको हटाया या बदला नहीं जा सकता, उसके विषय में तू शोक नहीं कर सकता। हे भरतवंशी! सब जीव पहले अप्रकट थे, बीच में प्रकट हो गये हैं, अन्त में भी छिप जाने वाले ही हैं, इससे इनमें शोक क्या करना है? कृष्ण जी कहते हैं कोई इस जीव को देखकर आश्चर्य करता है, कोई इसका वर्णन से आश्चर्य करता है, कोई इसका वर्णन इसे आश्चर्य मानकर करता है, कोई इसे सुनकर आश्चर्य करता है और कोई इसे सुनकर भी जानता नहीं है। हे भरतवंशी अर्जुन! सब के देह में यह देहवाला आत्मा सदा अवध्य है। यह नहीं मारा जा सकता है। इसलिये अर्जुन, तू सब प्राणियों के मरने पर शोक नहीं कर सकता।

कृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं कि तुझे अपने धर्म का विचार करके भी डरना नहीं चाहिये क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध के अतिरिक्त क्षत्रिय का अन्य किसी प्रकार से कल्याण नहीं है। कृष्ण जी अर्जुन को यह भी समझाते हैं कि तू यह समझ कि तुझे अकस्मात् स्वर्ग का खुला हुआ द्वार मिल गया है। ऐसे युद्ध को तो सौभाग्यशाली क्षत्रिय पाते हैं। यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा, तो फिर अपने धर्म और यश को छोड़कर पाप को पायेगा। लोग तेरे अपयश की चर्चा सदा-सदा किया करेंगे। हे अर्जुन! कीर्तिमान् की अपकीर्ति मौत से भी बढ़कर होती है। तेरे युद्ध न करने पर महारथी शूरवीर लोग तुझको डर कर युद्ध से हटा हुआ समझेंगे। जिनके सामने तू बहुत मान-सम्मान पाया

हुआ है, युद्ध न करने पर उन लोगों में तू हलकेपन को प्राप्त होगा। तेरे शत्रु तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुझे बहुत सी गालियाँ देंगे। भला इससे बढ़कर तेरे लिये क्या दुःख हो सकता है? यदि तू मारा गया, तो स्वर्ग को पावेगा और जीत गया, तो पृथिवी के सुखों को भोगेगा। इसलिये हे कुन्तीपुत्र ! तू निश्चय करके युद्ध के लिये खड़ा हो जा। सुख और दुःख को, लाभ और हानि को, जय और पराजय को एक सा समझकर युद्ध के लिए तत्पर हो जा, इसका दृढ़ निश्चय कर ले। ऐसा करने से तुझे पाप नहीं लगेगा।

कृष्ण जी के उपदेश सुनकर अर्जुन का मोह व शंकायें दूर हो गई थीं और वह युद्ध के लिए तैयार हो गया था। उसने युद्ध किया और पाण्डवों की विजय हुई। आज भी लोग कृष्ण जी, अर्जुन, भीम, आदि की वीरता व युद्ध कौशल की प्रशंसा करते हैं और उनसे प्रेरणा लेते हैं। युधिष्ठिर का कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धर्म न छोड़ने से परिचित होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। कृष्ण जी के व्यक्तित्व का विराट रूप भी महाभारत युद्ध सम्पन्न होने के कारण ही प्रकाश में आया और इसी कारण वह आज हम सभी के पूज्य व स्तुत्य हैं। सभी मनुष्यों के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं, जब उन्हें निराशा व अवसाद से गुजरना पड़ता है। परिवारों में प्रियजनों की मृत्यु पर भी मनुष्य दुःख व शोक में डूब जाते हैं। ऐसे समय में भी कृष्ण का आत्मा बोध विषयक यह उपदेश व गीता का अध्ययन मनुष्यों के दुःख व शोक को दूर करता है। वह निराश व दुःखी व्यक्ति देह की नश्वरता व शुभ कर्मों से मनुष्यों के देवकोटि में जन्म लेने की व्यवस्था को जानकर निर्भय होकर हर स्थिति का सामना करने में सक्षम होते हैं।

महर्षि दयानन्द ने श्री कृष्ण जी को ऋषि व योगियों के समान आप्त पुरुष की संज्ञा दी है। सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में वह श्री कृष्ण जी की प्रशंसा में उनके यथार्थ व्यक्तित्व व युक्तियुक्त मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं - **'देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिस में कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त, बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष (कृष्ण जी पर) लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी, कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों रास-मण्डल व क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी पर लगाये हैं। इस को पढ़-पढ़ा व सुन-सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता, तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती।'** इन पंक्तियों में ऋषि दयानन्द ने, जो महाभारत काल के बाद वेदों के मन्त्रों के सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाले सबसे बड़े प्रामाणिक विद्वान्, ऋषि व योगी हुए हैं, उन्होंने श्री कृष्ण जी को आप्त पुरुष एवं महात्मा शब्द से सम्मानित किया है। यही कृष्ण का सच्चा स्वरूप है। मूर्तिपूजा के एक अन्य प्रसंग में महर्षि दयानन्द द्वारिका के श्री कृष्ण मन्दिर को अंग्रेजों द्वारा तोप से तोड़ दिये जाने का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि १८५७ के उस युद्ध में वहाँ बाघेर लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध वीरतापूर्वक युद्ध किया लेकिन कृष्ण की मूर्ति एक मक्खी की टाँग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण जीवित होते, तो अंग्रेजों के धुर्रे उड़ा देते और यह अंग्रेज (देश से) भागते फिरते। अतः मूर्तिपूजा और श्री कृष्ण जी के चरित्र को दूषित करने वाला भागवत पुराण त्याज्य है, जिससे श्री कृष्ण जी का अपयश रुके और महाभारत में वर्णित उनकी सत्कीर्ति का प्रचार हो।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी को ध्यान में रखकर हमने यह लेख लिखा है। इसी के साथ इसे समाप्त करते हैं। ओ३म् शम्।

'दयानन्द सन्देश' परिवार की ओर से समस्त पाठकों को 'रक्षाबन्धन' एवं 'श्री कृष्ण जन्मोत्सव' की हार्दिक शुभकामनाएं।

❑❑

स्त्री, पुरुष - दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं

(कृष्ण चन्द्र गर्ग,पंचकूला, मो0:-0172-4010679)

आजकल स्त्री और पुरुष में समानता की जो वकालत की जा रही है, इसमें समानता की कम और प्रतिद्वन्द्विता की बू ज्यादा आती है। यह भावना परिवार में सौहार्द के लिए खतरनाक है। इससे पति-पत्नी में प्रेम की अपेक्षा द्वेष की भावना पनपती है, जो परिवार के लिए सुखकारी नहीं है और बच्चों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं, "स्त्री और पुरुष चने के आधे- आधे दल की भान्ति हैं। जैसे दोनों दल मिलकर पूरा चना बनता है, ऐसे ही स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर ही पूर्ण होते हैं।"

Benjamin Franklin, a great American Philosopher of 18th century, says, "Man and woman have each of them qualities and tempers in which the other is dificient, and which in union contribute to the common felicity. Single and seperate they are not the complete human beings : they are like the odd halves of scissors."

अर्थ- अठारहवीं सदी के महान अमरीकी दार्शनिक बैंजामिन फ्रैंकलिन कहते हैं, "पुरुष और स्त्री- प्रत्येक में वे गुण और स्वभाव हैं, जो दूसरें में नहीं हैं और वे मिलकर दोनों एक दूसरे को प्रसन्नता और सुख देते हैं। वे दोनों अलग- अलग पूर्ण मानव नहीं बनते, वे कैंची के दो अलग- अलग फालों की तरह हैं।"

स्त्री और पुरुष दोनों के कार्य और जिम्मेदारियाँ अलग अलग हैं। स्त्री घर में गाय आदि पशुओं की देख-भाल करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है, पति की जरूरतों को पूरा करती है, सास, ससुर, देवरों और ननदों को उचित सम्मान देती है। घर की साफ-सफाई रखना, उत्तम स्वास्थ्यवर्धक भोजन तैयार करना, रोगी होने पर परिवार को औषधि देना, घर में आए अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करना, घर के खर्च का हिसाब रखना- ये सभी काम स्त्री के अधीन रहते हैं।

पुरुष घर को चलाने के लिए तथा शुभ कार्यों में दान देने के लिए सात्विक तरीकों से धन कमाता है। पत्नी को, बच्चों को तथा परिवार के अन्य सभी सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करता है। पुरुष बाहर से थका-मान्दा और परेशान आता है, तो स्त्री मीठी और शान्ति देने वाली वाणी बोलकर उसे शान्त करती है। एक दूसरे को देखकर पति, पत्नी का चेहरा खिल उठता है।

अथर्ववेद का मन्त्र है-

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्।।

अर्थ- पति, पत्नी दोनों मिलकर चकवा, चकवी की भान्ति प्रेमपूर्वक रहे। उत्तम घर वाले और उत्तम सन्तान वाले होकर सारी आयु आनन्द से व्यतीत करें।

मनुस्मृति में महर्षि मनु लिखते हैं-

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।

अर्थ : जिस परिवार में पत्नी से प्रसन्न पति और पति से प्रसन्न पत्नी रहती है, उस कुल में सदा निश्चित कल्याण होता है।

ये सारी बातें बताती हैं कि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं।

स्त्री सम्मान की बात भी जोर शोर से उठाई जा रही है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद का मन्त्र है-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवा भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।

अर्थ- पति अपनी पत्नी से कहता है, हे स्त्री! तू अपने सास, ससुर, ननदों और देवरों सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करके घर में रानी की तरह रह।

इसी सम्बन्ध में महर्षि मनु लिखते हैं-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

अर्थ : जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उस घर में देवता वास करते हैं अर्थात् उस घर में उत्तम भोज्य पदार्थ और उत्तम सन्तान होते हैं। और जिस घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, वहाँ सब क्रिया निष्फल हो जाती है।

समस्त देशवासियों को राष्ट्रीय पर्व 'स्वतन्त्रता दिवस' के शुभ अवसर पर बहुत-बहुत बधाई और हार्दिक शुभकामनाएं।

❑❑

सर सैयद का कुरान भाष्य

(प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु, वेद सदन, अबोहर)

सर सैयद ने कुरान का भाष्य किया, जो इस समय दुष्प्राप्य है। इस बात का पता लगाने के लिये कि ऋषि के सत्संग का सर सैयद के धार्मिक विचारों पर कितना गहरा, कितना विप्लवकारी, प्रभाव पड़ा सर सैयद के कुरान भाष्य को एक दृष्टि में पढ़ जाना पर्याप्त है। इस भाष्य के विषय में मैं अपनी निजी सम्मति आपके सम्मुख न रख कर सर सैयद के मित्र और भक्त मौलाना अलताफ हुसैन हाली, जिनसे सर सैयद ने सुप्रसिद्ध उर्दू काव्य मुसद्दसे हाली लिखवाया था और अपनी इस महत्वपूर्ण प्रेरणा पर उन्हें इतना गर्व था कि वह बिना झिझक कहते थे कि यदि अल्लाह ने कयामत में पूछा कि तुम्हारे जीवन का एक अद्वितीय पुण्य-कार्य क्या है, तो मैं मुसद्दस पेश करूँगा, "या अल्लाह! क्या एक मनुष्य-जीवन का यह छोटा परिणाम है?" मैं हाली के शब्द उनके लिखे सर सैयद के जीवन-चरित्र से, जिसका नाम लेखक ने अपनी भावुकता में हयाते-जावेद अर्थात् अमर-जीवन रखा है- उद्धृत करूँगा। हाली ने उक्त चरित के पृष्ठ ५२४ से ५३२ तक एक सूची दी है। उसमें उन सब भेदों का दिग्दर्शन कराया है, जो सर सैयद के कुरान-भाष्य को अन्य तफसीरों से अलग एक ओर खड़ा कर देते हैं। कुछ भेद मुसलमानों में प्रचलित ऐसी साम्प्रदायिक धारणाओं के सम्बन्ध में हैं, जिनमें आपको स्वारस्य नहीं और हमें इस व्याख्यान माला में उनसे कुछ विशेष काम भी नहीं है परन्तु सर सैयद की तफसीर की अधिकांश विशेषताएँ ऐसी हैं, जो ऋषि की मानसिक छाप का सबल सन्देहातीत प्रमाण हैं। इन्हें अभी हाली के शब्दों में आपके कर्ण-गोचर कराऊँगा। हाली का कहना है - "अन्य मुसलमान अन्वेषणकार (मुहक्किक) इन भेदों इख्तिलाफों के विषय में सर सैयद से सहमत हैं।" इस कथन में दो शब्द विशेषतया ध्यान देने योग्य है। 'एक मुहक्किक' दूसरा 'इख्तिलाफ। मुहक्किक का शब्दार्थ है- 'सत्यान्वेषी'। ऋषि से पूर्व सत्यान्वेषी कहाँ थे? यह एक समस्या है। इस सत्यान्वेषण का जिस के साथ हाली के कथनानुसार अन्य विद्वान् सहमत थे- सर सैयद को कितना कठोर फल भोगना पड़ा? इस का वर्णन आगे किया जायेगा। न जाने उस सहमति को सर सैयद की स्पष्ट सहायता करने में हिचकिचाहट क्यों हुई? 'इख्तिलाफ़' भेद शब्द इस सहमति का स्पष्ट खण्डन कर रहा है। इन इख्तिलाफों की तालिका निम्न प्रकार दी है-

४. कुरान की कोई आज्ञा जो एक आयत में कही गई थी किसी दूसरी आयत से मनसूख (प्रत्याख्यात) नहीं हुई। और न कुरान की किसी आयत का पाठ निषिद्ध हुआ। सूरा बकर की इस आयत से कि हम मनसूख करते हैं आयतों में से और देते हैं भुला कुरान की किसी आयत का निराकर्त्री या निराकृता होना अभिप्रेत नहीं, किन्तु उस (कुरान) की कतिपय आयतों द्वारा उस से पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रों के कुछ विधानों का मनसूख होना अभिप्रेत है।

५. कुरान में किसी प्रकार की वृद्धि या ह्रास या हेर फेर नहीं हुआ.... जिन साक्षियों से वृद्धि या ह्रास या परिवर्तन होना पाया जाता है, वह सब असत्य मनघड़न्त हैं।

६. हदीस की छैः (सिहाह-सित्ता) या दो भी सच्ची

पुस्तकों (सहीहैन) की सब साक्षियों को जब तक हदीस-शास्त्र के नियमानुसार उन की जाँच न की जाए, विश्वसनीय न समझना चाहिये।

७. शैतान या इब्लीस का शब्द जो महान् कुरान में आया है, उस स कोई मनुष्येतर तत्त्व अभिप्रेत नहीं किन्तु मनुष्य में जो आसुरी प्रवृत्ति या पशुभाव है, वह अभिप्रेत है।

६. सिवाय उन काफिरों और मुश्रिकों के-जिन का वर्णन कुरान की इस आयत में हुआ या जिन पर यह आयत लागू है कि खुदा तुम को मनाही नहीं करता, अपितु उन लोगों की मित्रता की जो तुम से धर्म के सम्बन्ध में लड़े और जिन्होंने तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाल दिया और तुम्हारे निकालने में औरों की मदद की- सब काफिरों और मुश्रिकों से मित्रता की अनुज्ञा है।

१४. पहरावे आदि में काफिरों का सादृश्य शास्त्रानुसार निषिद्ध नहीं।

१५. कुरान की किसी आयत से मनुष्य की (कर्म तथा भोग में) पराधीनता और (अनादि निश्चित) दैव को सिद्ध करना तथा किसी आयत से जबर (जोर) का तर्क करना शास्त्रकार के अभिप्राय के विरुद्ध है।....

१६. आकाशारोहण और हृदय-विदारण दोनों स्वप्न में हुए थे, न कि जाग्रत् अवस्था में...

१७. यद्यपि सम्भव है कि जिस प्रकार मनुष्य से अधम प्राणी विद्यमान हैं, इसी तरह मनुष्य योनि से उत्तम योनियाँ भी हों, जिनका हमें ज्ञान नहीं हैं, परन्तु 'फरिश्ता' आदि शब्दों से जिन का कुरान में व्यवहार है, यह अभिप्राय नहीं कि वह कोई मनुष्येतर पृथक् प्राणी है। किन्तु परमेश्वर ने जो भिन्न-भिन्न शक्तियाँ अपने पूर्ण सामर्थ्य से प्रकृति को प्रदान की हैं, जैसे पहाड़ों की कठोरता, पानी का द्रवत्व, वृक्षों की वृद्धि, विद्युत् में आकर्षण विकर्षण का गुण इत्यादि इन्हीं को मलाइक' फरिश्ते- शब्द से वर्णित किया गया है।

१८. आदम और फरिश्तों और शैतान की कथा जो कुरान में वर्णन की गई है, वह किसी घटना का समाचार नहीं किन्तु एक रूपक है, जिस के मिष से मनुष्य के स्वभाव, उसकी उत्तेजनाओं और पाशविक शक्तियों की दुष्टता या विरोध का वर्णन है। इसी प्रकार के और भी कई रूपक कुरान में वर्णित हैं।

१६. चमत्कार पैगम्बरी का प्रमाण नहीं।

२०. कुरान में मुहम्मद साहिब के किसी चमत्कार का वर्णन नहीं किया गया।

२३. जो लोग रोज़ा कठिनता से रखते हैं.... वे रोज़ों के बदले फ़िदिया दान दे सकते हैं।

२४. जिस ब्याज का निषेध कुरान में किया है, उससे अभिप्राय वह कुसीद जीविका है, जो अविद्या के समय (अर्थात् मुहम्मद के आने से पूर्व) अरब में प्रचलित थी।...... इससे उस लाभ का निषेध नहीं, जो हुंडियों पर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी राज्य या संघ का जो देश की उन्नति के लिये रुपया ऋण ले ब्याज का रुपया देना या किसी समाज का जो लोकहित के कार्य के लिये धन एकत्रित करें, ब्याज पर धन लगाना और उस ब्याज से परोपकार करना निषिद्ध ब्याज के अन्तर्गत नहीं।

२६. शहीदों के विषय में कुरान में आया है कि उन्हें मरा नहीं, जीता समझो इस से उनका पारलौकिक पदोत्कर्ष तथा आध्यात्मिक आनन्द और संसार में अनुकरणीय उदाहरण छोड़ना अभिप्रेत है, यह नहीं कि वे वस्तुतः जीते हैं और जीवितों की भाँति खाते- पीते हैं।

२७. 'सूर'-नरसिंहा का शब्द जो कुरान में कई बार आया है, उस से कोई वास्तविक वाद्य शंखादि अभिप्रेत नहीं, किन्तु अलंकार रूप में- जैसे शंख की ध्वनि पर

सेना एकत्रित हो जाती है- परमात्मा की इच्छानुसार (कयामत में) प्राणियों का उठना और इकट्ठा होना इष्ट है।

२८. परमेश्वर के अस्तित्व और गुणों तथा नामों और कार्यों के विषय में जो कुरान और हदीस में आया है, वह सब अलंकार और रूपक के ढंग से आया है। इसी प्रकार परलोक के विषय में लोगों का उठना, इकट्ठा होना, लेखा- जोखा, तुला पुल, स्वर्ग और नगर आदि यह सब भी अलंकार हैं, यथार्थ नहीं।

२९. कुरान में जो खुदा की पृथिवी और आकाश को छह दिन में बनाना लिखा है, इस से किसी घटना का समाचार देना अभिप्रेत नहीं, किन्तु यहूदियों के इस विश्वास का खण्डन इष्ट है कि परमेश्वर ने पृथिवी और आकाश को छह दिन में बनाकर सातवें दिन विश्राम किया।

३०. कुरान में जो स्थान-स्थान पर प्राचीन जातियों में दुष्टता और दुराचार के फैल जाने के अनन्तर उन पर तरह-तरह की आपत्तियों का आना और किसी जाति का आँधी और बाढ़ से, किसी का टिड्डियों और अन्य कीटादि से, नाश को प्राप्त होना लिखा है, उसका अर्थ यह नहीं कि वस्तुतः उन के पाप और दुष्कर्म इन आपत्तियों के कारण बने थे, अपितु सृष्टि के आरम्भ से यह विश्वास प्रत्येक जाति में प्रचलित रहा है कि जो भयंकर घटनाएँ संसार में होती हैं, वे मनुष्यों के पापाधिक्य के कारण होती हैं, और पैगम्बरों का काम यह है कि जिन विचारों पर लोगों का स्वाभाविक विश्वास आश्रित है- यदि वे विचार उन के संदेश के बाधक नहीं हों तो. ... उनके अनुसार जनता को सम्बोधित करें।

३१. परमेश्वर का दर्शन क्या इस लोक और क्या परलोक में न बाह्य चक्षुओं से होना समभव है न अन्तश्चक्षु से।

३२. महान् कुरान में जो बदर और हुनैन के संग्रामों में फरिश्तों की सहायता का वर्णन है, उस से फरिश्तों का (वास्तविक) आगमन सिद्ध नहीं होता।

३३. कोई घटना परमेश्वर के (नित्य) व्यवहार और सृष्टि नियम के प्रतिकूल कभी नहीं होती।

३४. कुरान में जो यह कहा है कि इस (कुरान) के सदृश कोई सूरत या आयतें लाओ (इस से जैसे प्रायः मुसलमान समझते हैं।), यह अभिप्रेत नहीं कि ऐसी साहित्यकार साहित्यिक रचना नहीं की जा सकती, अपितु यह अभिप्राय है कि ऐसी रचना जो विद्वानों और दार्शनिक तत्ववेत्ताओं से लेकर अनपढ़ों, बनवासी बद्दुओं, और ऊँट चराने वालों सब के पथप्रदर्शन के लिये समान लाभदायक हो.... तुम से होनी असम्भव है।"

इस तालिका से आप दो प्रकार के परिणाम निकाल सकते हैं। यह तालिका सर सैयद के प्रचलित भाष्यकारों से, 'इख्तिलाफों की है अतः यह सिद्ध है कि प्रचलित इस्लाम का विश्वास इन मन्तव्यों के विपरीत था। एक ओर सर सैयद के कुरानानुवाद के आधारभूत इन सिद्धान्तों को रखिये और दूसरी ओर इनके विपरीत प्रचलित इस्लाम के विश्वासों की कल्पना करते जाइये। आपको यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि यह इस्लाम पर आर्यसमाज ही की छाया है। हाली महाशय अपनी उक्त पुस्तक के परिशिष्ट के पृष्ठ ७५७ व ७७३ पर लिखते हैं-

"कुछ लोग जो सर सैय्यद के विषय में कहते हैं कि जो अर्थ कुरान के उन्होंने लिखे हैं, वे न खुदा को सूझे न रसूल को, सम्भवतः सर सैयद की कुछ व्याख्याओं के सम्बन्ध में ऐसा कथन क्रूरोपहास मात्र है।"

इस लेख से आप यह भी समझ सकते हैं कि सर सैयद के भाष्य का साधारण इस्लामी जनता में कैसा

स्वागत हुआ होगा। सृष्टि-नियम को परमात्मा के स्थायी स्वभाव के साथ समकोष्ठक करने से सर सैयद का नाम रखा गया नेचरी। भारतवर्ष ही नहीं, भारतवर्ष के बाहर से भी व्यवस्थाएं आईं कि सर सैयद काफिर हैं अमर जीवन के पृष्ठ ५४७ पर हाली लिखते हैं-

"देखने से पता चला है कि मुसलमानों के जितने सम्प्रदाय भारत में हैं, क्या सुन्नी क्या मुकल्लिद शीया, क्या गैर मुकल्लिद, क्या वहाबी, क्या वदाअती, सब सम्प्रदायों के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध विद्वानों और पण्डितों की इन व्यवस्थाओं पर मुद्राएं या हस्ताक्षर हैं।"

पृष्ठ ५५१ पर एक व्यवस्था से कुछ उद्धरण दिया है, जो अरब के चार मुफ्तियों ने दी थी। उस व्यवस्था का संक्षेप यह है-

"यह पुरुष भटका हुआ और भटकानेवाला है। यही नहीं, वह शैतान का स्थानापन्न है, जो मुसलमानों को बहकाने का इच्छुक है। इस का उपद्रव यहूदियों और ईसाइयों के उपद्रव से बढ़कर है। परमेश्वर इस को समझे। समूह का कर्त्तव्य है, इस से बदला ले। इसे झिड़कना चाहिये। मूर्ख हो तो समझाना चाहिये। समझ जाए तो अच्छा, नहीं तो मारना और कैद करना चाहिये।" इत्यादि।

एक और व्यवस्था में सर सैयद के वध का विधान भी किया है। यह है मुसलमान सत्यान्वेषियों की उस सहमति की सत्यता, जिसकी ओर हाली ने ऊपर संकेत किया था। इस कथन से हमारा अभिप्राय यह नहीं कि किसी और मुसलमान ने इन अर्थों को अंङ्गीकार किया ही नहीं, परन्तु उस अंगीकार का प्रभाव प्रचलित इस्लामी विचार पर, या सर्वथा नहीं, या नहीं के समान, रहा।

हाली ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ४८७ से ५३२ तक सर सैयद कुरान-भाष्य की उन विशेषताओं का वर्णन किया है, जो उनके कथनुसार सर सैयद की मौलिक अछूती उपज है। इन पर भी हाली इतना बन्धन अवश्य लगाते हैं कि "विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन (भाष्यकारों) में से कोई इस ओर नहीं गया।" कुछ विशेषताएं ये हैं-

१. इस्लाम ने दासता को सदा के लिए वर्जित किया है।....

२. .... दुआ की स्वीकृति से उस इष्ट का, जिसके लिये दुआ की है, प्राप्त होना अभिप्रेत नहीं....।

३. चमत्कार या चिन्हादि शब्द, जो कुरान में स्थान-स्थान पर व्यवहृत है, उनसे वे आज्ञाएँ या उपदेश और शिक्षाएँ इष्ट हैं, जो परमेश्वर ने ज्ञानाविष्कार द्वारा नबियों पर उतारी हैं.... चमत्कार नहीं।

५. यदि पुरुष को सन्देह भी हो कि वह अनेक भार्याओं में न्याय न कर सकेगा, तो उसे एक से अधिक विवाह की अनुज्ञा नहीं।

७. कुरान में जिन्न भूत आदि शब्दों से गुप्त या पर्वतीय या मरुस्थलीय लोग अभिप्रेत हैं, न कि वह भयात्मक सृष्टि जो भूत प्रेतादि नाम से कही जाती हैं।

८. सूरा फ़ील में जिन शब्दों से हस्ति-सेना पर अबाबीलों का पत्थर फेंकना इष्ट समझा जाता है, यह वस्तुतः चेचक रोग का आलङ्कारिक वर्णन है इत्यादि। अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया है। इन लंबे तथा थका देने वाले उद्धरणों के लिये मेरे विचार में क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं। कारण कि सर सैयद ऋषि दयानन्द के समकालीन मुसलमान भक्तों में से एक गिने जाते हैं। कहा जाता है कि वह ऋषि को भारत का आध्यात्मिक सम्राट् और मनुष्य-समाज का एक ऐसा मौलिमणि व्यक्ति समझते थे, जिस पर ईश्वरीय ज्ञान का अव्यवहित आविष्कार होता है। अतः उन के विचारों पर ऋषि का प्रभाव होना स्वाभाविक था।

❑❑

श्री कृष्ण चन्द के गुण गाओ

(पं. नन्दलाल निर्भय - सिद्धान्ताचार्य कविरत्न आर्य सदन ग्राम बहीन, जनपद- पलवल,हर0)

युग नायक श्री कृष्ण चन्द्र के, सब नर-नारी गुण गाओ।
ईश्वर के सच्चे भक्त बनो, पावन वैदिक पथ अपनाओ।।

अन्याय बड़ा था धरती पर, जब चारों ओर अंधेरा था।
सब भूल गए थे, धर्म-कर्म, दानव दल का सब फेरा था।।
साधु सन्त थे आतंकित, दुष्टों ने डाला डेरा था।
ज्ञानी-ध्यानी अपमानित थे, गुण्डों का यहाँ बसेरा था।।

इतिहास पुराना याद करो, विद्वान् बनो तुम सुख पाओ।
ईश्वर के सच्चे भक्त बनो, पावन वैदिक पथ अपनाओ।।

वेद सभ्यता- सदाचार को, भूल गए थे नर-नारी।
खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ, कहते थे भ्रष्टाचारी।।
छीना झपटी मची हुई थी, व्याकुल थी जनता सारी।
देवों के इस आर्यावर्त्त में, गउएं जाती थीं मारी।।

भारत की थी दुर्दशा बहुत, तुम समझो जग को समझाओ।
ईश्वर के सच्चे भक्त बनो, पावन वैदिक पथ अपनाओ।।

जरासंध, शिशुपाल यहाँ, निशदिन करते थे शैतानी।
दुर्योधन, कंस दुराचारी, पापी करते थे मनमानी।।
भीम द्रोण अरु कृपाचार्य, दिखा रहे थे नादानी।
तिरस्कृत होते थे ईश्वर-भक्त विदुर जैसे ज्ञानी।।

पढ़ो महाभारत को मित्रो! उच्च शिखर पर चढ़ जाओ।
ईश्वर के सच्चे भक्त बनो, पावन वैदिक पथ अपनाओ।।

ईश्वर ने भारी कृपा की, श्री कृष्ण पधारे भारत में।
वेद विरोधी दुष्ट सभी, केशव ने मारे भारत में।।
शिशुपाल, कंस, अरू शाल्व दैत्य, सब रिपु संहारे भारत में।
श्री कृष्ण चन्द्र ने धर्मी जन, सब पार उतारे भारत में।।

भारत के नव युवको जागो मत इधर- उधर धक्के खाओ।
ईश्वर के सच्चे भक्त बनो, पावन वैदिक पथ अपनाओ।।

उग्रवाद-आतंकवाद का, भारत में है जोर सुनो।
देश द्रोही धूर्त, कुकर्मी मचा रहे हैं शोर सुनो।।
लो चक्र सुदर्शन हाथों में, तुम दुष्टों का संहार करो।
श्री कृष्ण चन्द्र बन जाओ तुम, प्यारे भारत के कष्ट हरो।।

कहता है "नन्दलाल निर्भय", कर्त्तव्य निभाओ, योद्धाओ।
ईश्वर के सच्चे भक्त बनो, पावन वैदिक पथ अपनाओ।।

❑❑

भारतवर्ष की नींव गाय और गुरूकुलों पर टिकी हैं।

(खुशहाल चन्द्र आर्य, कोलकता,मो0:-०९८३०१३५७९४)

किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व को तीन गुणों की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। पहला बल, दूसरा बुद्धि और तीसरा चरित्र। गाय और गुरुकुल इन तीनों गुणों को बढ़ाने वाले होते हैं। इसीलिए प्राचीन भारत में गउओं का पालन और गुरुकुल शिक्षा पद्धति ही अधिक चलती थी। तभी ''भारत विश्वगुरु'' तथा ''सोने की चिड़िया'' कहलाता था। अंग्रेजों से आने से पहले तक भी गाय का पालन तथा गुरुकुलों की शिक्षा काफी मात्रा में थी। तभी अंग्रेजों ने समझ लिया था कि यदि हमको भारत पर शासन करना है, तो गो-हत्या चालू करनी पड़ेगी और गरुकुलीय शिक्षा पद्धति समाप्त करनी पड़ेगी। इसीलिए उन्होंने गाय की हत्या के लिए हिन्दू-मुसलमानों में फूट डाली और गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को समाप्त करने के लिए स्कूलों का प्रचलन किया। गुरुकुलों के महत्व को हटाकर इंग्लिश स्कूलों का महत्व बढ़ाया, जिससे जन साधारण ने अपने बच्चों को गुरुकुलों में न भेजकर इंग्लिश मीडियम स्कूलों में पढ़ाना आरम्भ कर दिया। इसी से गो-हत्या आरम्भ हो गई और गुरुकुलों की संख्या कम होने लगी।

हमें अफसोस है कि भारत को स्वतन्त्र हुए सत्तर वर्ष हो गए लेकिन कांग्रेस सरकार ने इन दोनों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। अब देश का सौभाग्य उदय हुआ है, भारत का शासन बी.जे.पी. के हाथों में आ गया है और देश का प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जैसा त्यागी, तपस्वी, ईमानदार व परिश्रमी व्यक्ति जो हिन्दुत्व की भावना से ओतप्रोत है। साथ ही पूज्य योगाचार्य स्वामी रामदेव जी महाराज, जो गुरुकुलों में पढ़े हुए हैं और महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त हैं। वे मोदी जी के मार्गदर्शक हैं। अब हमें पूरी उम्मीद है कि इन दोनों की तरफ सरकार पूरा ध्यान देगी और देश पुनः उन्नत व समृद्धशाली बनेगा।

अब प्रश्न उठता है कि गाय और गुरुकुलों से देश उन्नत और समृद्धिशाली कैसे बनेगा? इसका उत्तर हम ऊपर लिख चुके हैं कि देश को उन्नत और समृद्धिशाली बनाने के लिए तीन गुण बल, बुद्धि और चरिण की आवश्यकता होती है। यह तीनों गुण गाय और गरुकुलों में विद्यमान हैं। गाय केवल घास खाकर उसके बदले में दूध, दही, मक्खन व छाछ आदि पौष्टिक व उपयोगी चीज देती है, जिनके खाने से शरीर बलिष्ठ तथा हृष्ट पुष्ट के साथ-साथ सुन्दर व आकर्षक भी बनता है। गाय का दूध पीने से बुद्धि पवित्र व सात्विक बनती है। साथ ही बुद्धि की वृद्धि होती है। जिससे मनुष्य के विचार सात्विक होने से वह चरित्रवान भी बनता है। इसी प्रकार गुरुकुलों में संस्कृत और वेद पढ़ने से उसकी बुद्धि निर्मल व सात्विक बनती है। पच्चीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहने से विद्यार्थी बलिष्ठ व चरित्रवान बनता है। बुद्धि पवित्र और सात्विक होने से उसमें मानवता के सभी गुण जैसे दया, करुणा, सहृदयता, परोपकारिता, निष्पक्षता, सच्चाई, ईमानदारी, साहस आदि गुण स्वमेव ही आ जाते हैं। और वह एक पूर्ण मानव बन जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानवीय गुण आने के गाय और गुरुकुल दो ही माध्यम हैं। इनके ऊपर हम और अधिक विशेष चर्चा करते हैं।

गाय : गाय मनुष्य की सर्वोत्तम सहयोगी है। मानव को पूर्ण मानव बनाने में गाय का सबसे अधिक योगदान होता है। वैसे तो ईश्वर ने सृष्टि के आदि में प्रकृति की सब चीजें यानि पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नदी, नाले, पहाड़, वन, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि सब मनुष्यों

के लिए बनाये हैं। इन सभी का मनुष्य किसी का प्रयोग, किसी का सहयोग, किसी का उपभोग करता है। जैसे गाय, भैंस, बकरी, दूध के लिए, घोड़ा, हाथी, ऊँट सहयोग के लिए, सोना, चांदी, लोहा, लकड़ी प्रयोग के लिए और अन्न, फल, बनस्पति आदि उपभोग के लिए बनाये हैं। हमें इसी प्रकार प्रयोग, सहयोग व उपभोग करना चाहिए। इसी में मानव की मानवता है।

ईश्वर ने जीव की दो किस्म की योनियाँ बनायी हैं। एक भोगयोनि और एक कर्मयोनि। पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि केवल भोग योनि हैं। इसमें जीव जो कर्म करता है, उसको स्वभाविक कर्म कहते हैं। जैसे खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना तथा सन्तान उत्पत्ति आदि। इन कर्मो का जीव को कोई फल नहीं मिलता। परन्तु मनुष्य भोगयोनि के साथ-साथ कर्म योनि भी है। साधारण भोग जैसे पशु-पक्षी करते हैं, वैसे ही मनुष्य भी भोगयोनि होने से साधारण कर्म करता है। उसका फल मनुष्य को भी नहीं मिलता। मनुष्य कर्मयोनि भी है, इसलिए उसको उसके लिए अच्छे व शुभ कर्मो का फल सुख के रूप में और बुरे व अशुभ कर्मो का फल उसे दुख के रूप में ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार देता है।

मनुष्य जो कर्म करता है, उन्हें नैमित्तिक कर्म कहते हैं। नैमित्तिक कर्म वह होते हैं, जो सीखने से सीखा जाये। माता-पिता बच्चे को चलना सिखाते हैं और बोलना सिखाते हैं। तभी बच्चा चलना व बोलना सीखता है। पशु-पक्षी के बच्चे स्वयं ही चलना, बोलना सीख लेते हैं। उनके लिए यह कर्म स्वभाविक है और मनुष्य के लिए नैमित्तिक है। इसीलिए सृष्टि के आरम्भ में जब माता-पिता व गुरु कोई नहीं थे, तब ईश्वर ही सबका माता-पिता व गरु था। इसीलिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को क्या कार्य करने चाहिए और क्या कार्य नहीं करने चाहिए। इसको जानने के लिए चार ऋषियों जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा थे। उनके मुख से चार वेद, जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं, क्रमशः उच्चारित करवाये, जिनको पढ़कर और उनके अनुसार आचरण करके, अच्छे कर्मो को करे और बुरे कर्मो को छोड़े। जिससे मनुष्य अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके जिसके लिए ईश्वर जीव को उसके कर्मोनुसार मनुष्य योनि में भेजता है। इसलिए मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्यता के गुण, परोपकार, दया, करुणा, सहृदयता, साहस, निष्पक्षत, मृदुभाषिता, अहिंसा आदि गुणों को अपनावे और अवगुण, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, लालच, झूठ, बेईमानी, हिंसा आदि को छोड़ कर अपना उत्तम व श्रेष्ठ जीवन बना कर मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बने। मनुष्य योनि ही कर्म योनि होने के कारण मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। इसलिए मनुष्य योनि को ही मोक्ष का द्वार माना गया है। अन्य योनियां भोग योनियां होने से वे केवल भोग, भोगकर ही अगली योनि में चली जाती हैं। फिर जीव सब भोगों को अनेक योनियों में भोग कर फिर मनुष्य योनि में आता है और अच्छे कर्मो द्वारा मोक्ष को प्राप्त होता है। सब अच्छे कर्मो को करना और सब बुरे कर्मो को छोड़ना हमें वेद जो ईश्वर की वाणी है, सिखाता है। इसके लिए वेद में एक मन्त्र आया है।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव।।

अर्थ - हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिए और जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

इन सब शुभ कर्मो का करना और अशुभ कर्मो को छोड़ना, विशेषतः हमें गोपालन और गुरुकुल शिक्षा पद्धति

ही सिखलाती है। गौ के दूध, घी, दही, मलाई, छाछ से हमारी बुद्धि पवित्र और सात्विक बनती है जिससे हम बुरे कर्मों को छोड़ देते हैं। और अच्छे कर्मों को करते हैं। इसी प्रकार गुरूकुलों में बच्चे पच्चीस वर्षो तक ब्रह्मचारी रहकर वेदों को पढ़कर अपने जीवन को पवित्र के साथ-साथ बलवान व पुष्ट भी बनाते हैं। इसलिए इन दोनों की ओर मनुष्य को अधिक ध्यान देना चाहिए।

गावो विश्वस्य मातरः

अर्थात् - गाय विश्व की माता है।

गावो यत्र तत्र सुखम् : अर्थ - जहां गाय है, वहीं सुख है।

वेदों में गाय को माता कहा गया है। माता तो बच्चे को केवल तीन या चार वर्ष ही दूध पिलाती है। परन्तु गाय तो उम्र भर मनुष्यों को दूध पिलाती है। इसलिए गाय को माता मानना उचित है। साथ ही गाय मनुष्य पर अनेक उपकार करती है। वह अपने गोबर, गोमूत्र से उत्तम श्रेणी की खाद बनाती है, जिससे जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। गाय के गोबर, गोमूत्र व दूध, घी से अनेक किस्म की दवाईयां बनती हैं, जो मनुष्य के लिए बहुत लाभदायक हैं। यहां तक कि गो-मूत्र से तो कैन्सर तक की दवाईयां बनती हैं। जो काफी लाभदायक सिद्ध हो रही हैं। गाय के बछड़े हल जोतते हैं और गाड़ी खींचते हैं। इस प्रकार गाय मनुष्य के लिए बड़ी लाभदायक है। भारत एक कृषि-प्रधान देश है और गाय का कृषि से विशेष सम्बन्ध है। इसलिए गाय, भारत के लिए विशेष लाभदायक है। अतः भारत की उन्नति व समृद्धि के लिए गुरुकुलों को अधिक से अधिक खोल कर वेद प्रचार करना और गौशालाओं को अधिक से अधिक खोलकर गोरक्षा करना आज की सबसे अधिक आवश्यकता है। कारण इन्हीं दो कार्यो पर भारत की उन्नति व समृद्धि टिकी हुई है। इसलिए हमें इन दोनों कामों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

❑❑

पृष्ठ ११ का शेष

किसमें दम है शास्त्रार्थ करने का?' यह सुनकर आर्यसमाज के प्रधान जी सोच में ही थे कि क्या कहें! झट से स्वामी जी पीछे से उठकर आगे आए और कहा- 'आइए! आर्यसमाज सत्य-असत्य के निर्णय के लिए शास्त्रार्थ के लिए तैयार है। शास्त्रार्थ हुआ और आर्यसमाज की विजय हुई। क्योंकि यहाँ दक्षिणा के लोभ में अवैदिक मान्यताएँ चलाने के लिए अपने गुरु (दयानन्द) से द्रोह करने वाला पं० भीमसेन शर्मा नहीं था, न मुकद्दमे के लिए इकट्ठे हुए समाज के पैसे के लिए ऋषि दयानन्द से झगड़ा कर आर्यसमाज के विरुद्ध विषवमन करने वाला मुन्शी इन्द्रमणि था, अपितु यह तो ऋषि दयानन्द की भट्टी में तपने वाला त्यागी संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द था, जिसने महात्मा मुन्शीराम के द्वारा इनके प्रति प्रयोग किए गए कटुवचन की क्षमा माँगने पर पण्डितराज जगन्नाथ का यह श्लोक लिखा था-

अस्मानवेहि कलभानलमाहतानां
येषां प्रचण्ड मुसलैखदातवैव।
स्नेहं विमुच्य सहसा खलताम्प्रयान्ति
ये स्वल्पपीडनवशान्न वयं तिलास्ते।।

अर्थात् आप हमें चावल समझो, जो मूसलों के प्रहार से सफेद (उज्जवल) होते जाते हैं। हम वे तिल नहीं हैं, जो थोड़ी सी मार से ही स्नेह (तेल) छोड़कर खल (दुष्ट) बन जावें।"

यों तो हमारी कीमत बहुत है गुलशन,
कोई ग्राहक मिले, तो मुफ्त में बिक जाते हैं।।

(क्रमशः)

❑❑

उपनिषदों का त्रैतवाद

राजवीर शास्त्री

यद्यपि उपनिषदें वेदान्त का ही भाग होने से आध्यात्मिक-ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान का ही विशेषरूप से प्रतिपादन करती हैं । पुनरपि प्रसंग से ब्रह्म से भिन्न जीवात्मा तथा प्रकृति का भी वर्णन ही नहीं, प्रत्युत उन्हें अज=अजन्मा तथा शाश्वत माना है । देखिए उपनिषदों के कुछ स्थल, इस विषय में ये उद्धृत किये जाते हैं–

१. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥

(श्वेताश्वतर० ४।६), (ऋ० १।१६४।२०)

इस मन्त्र में प्रकृति को एक वृक्ष बताया है । उस पर दो पक्षी रहते हैं । ये जीवात्मा और परमात्मा ही हैं, जो व्याप्य-व्यापक भाव से साथ मिले हुए चेतन होने से मित्र की तरह हैं । वृक्ष को अचेतन होने से प्रकृति की और पक्षियों को चेतन होने से जीवात्मा-परमात्मा की उपमा दी है । इनमें से एक जीव रूपी पक्षी प्रकृति रूप वृक्ष के फलों को खाता है और दूसरा परमात्मा भोगादि से रहित होकर जीवों के कर्मों का साक्षी होकर कर्म-फल देता है।

२. अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ (श्वेताश्वतर० ४।5)

इसमें परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति तीनों को अज=अजन्मा अर्थात् कभी न उत्पन्न होने वाला बताया है । इनमें से एक प्रकृति सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण वाली और अपनी विकृति रूप प्रजा को उत्पन्न करने वाली है । इस अनादि व अजन्मा प्रकृति की वस्तुओं का एक अनादि व अजन्मा जीवात्मा भोग करता है, परन्तु दूसरा अनादि व अजन्मा परमात्मा इस जीव से भोगी जाने वाली प्रकृति को न भोगने के कारण पृथक् है ।

३. ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्राह्ममेतत् ॥

(श्वेताश्वतर० १।९)

इस मन्त्र में भी परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध और उनके स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है–परमात्मा सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् है, और जीवात्मा अल्पज्ञ व अल्पसामर्थ्य वाला है किन्तु दोनों ही अज=अनादि तथा उत्पन्न न होने वाले हैं । तीसरी प्रकृति भोक्ता=जीवात्मा के भोगने योग्य पदार्थों वाली है। और वह भी अज=कभी उत्पन्न नहीं होती। इन तीनों में से परमात्मा अनन्त, विश्वरूप (व्यापक) और सृष्टि को रचकर जीवात्माओं को कर्मानुसार फल भुगाने वाला है । ये तीनों ही ब्राह्म=ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली सृष्टि रचना में उपयोगी हैं ।

४. नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥

(कठोप० ५।१३)

वह परब्रह्म प्रकृत्यादि नित्यपदार्थों में नित्य और जीवरूप चेतनों में चेतनस्वरूप है, वह एक है और इस विभिन्नरूप सृष्टि की रचना करता है ।

यहां परमात्मा से भिन्न प्रकृत्यादि नित्यपदार्थों तथा ब्रह्म से भिन्न चेतन जीवों को स्पष्टरूप से स्वीकार किया है ।

५.ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ (कठोप० ३।१)

इस मन्त्र में जीवात्मा तथा परमात्मा को छाया-आतप के समान भिन्न-भिन्न माना है । और ये दोनों ही को

हृदयाकाश में प्रविष्ट बताया है । "गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ।" (ब्र० सू० १।२।११) इस सूत्र में भी जीव-ब्रह्म की भिन्नता का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है।

६. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

इस मन्त्र में सब को आच्छादित करने वाला 'तथा नियन्त्रण में रखने वाला परमात्मा, 'जगत्' शब्द से चराचर संसार और 'भुञ्जीथाः' शब्द से भोग करने वाले जीव का वर्णन होने से त्रैतवाद का स्पष्ट वर्णन है । क्योंकि परमात्मा तो स्वयं भोग नहीं करता और परमात्मा से भिन्न यदि प्रकृत्यादि की कोई सत्ता ही न हो तो वह किसे आच्छादन करता है? इसका कोई समाधान न होने से प्रकृति का तथा भोक्ता जीव का इसमें वर्णन है ।

७. सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः॥

(छान्दोग्यो० ६।८।४)

अर्थात् सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूलाधार और स्थिति का कारण है । यहाँ प्रकृति को 'सत्' कहा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता यह समस्त संसार प्रकृति का विकार होने से प्रकृति में ही लीन हो जाता है।

८. य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद ।

यस्य आत्मा शरीरम् ॥

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

इसमें जीवात्मा व परमात्मा का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध बताते हुए लिखा है कि सूक्ष्म होने से परमात्मा जीवात्मा में भी व्यापक है, यह आत्मा उस परमात्मा को नहीं जानता । उस परमात्मा का यह जीवात्मा निवास होने से शरीर के समान है । इससे स्पष्ट है कि जीवात्मा व्याप्य है और परमात्मा व्यापक है, अतः ये दोनों भिन्न-भिन्न सत्ताएं हैं।

९. रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ॥

(तैत्तिरीयोपनिषद्)

अर्थात् जीवात्मा आनन्दरूप नहीं है, परमात्मा आनन्दस्वरूप है । यह जीव परमात्मा के सान्निध्य से ही आनन्द को प्राप्त करता है ।

१०. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म॥

(तैत्तिरीयोपङ्ग)

इसमें परब्रह्म का लक्षण बताया गया है । वेदान्तदर्शन के "जन्माद्यस्य यतः।" सूत्र में जो ब्रह्म का लक्षण कहा है, वही यहाँ उपनिषद् में कहा है । वह परब्रह्म इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है। उपादानकारण नहीं, प्रत्युत निमित्तकारण है । जैसे घट के निर्माण में कुम्भकार निमित्तकारण है और मिट्टी उपादानकारण, वैसे ही सृष्टि-रचना में ब्रह्म निमित्तकारण है और प्रकृति उपादानकारण । ब्रह्म सृष्टि का उपादानकारण इसलिए नहीं है, क्योंकि सृष्टि में ब्रह्म के गुण नहीं हैं । उपादानकारण के गुण कार्य में अवश्य ही आते हैं ।

इस मन्त्र में यही बताया है, वह परब्रह्म ही सब भूतों की रचना करता है । इसको जीवित=बनाए रखता है और प्रलय काल में कारण में लीन भी करता है ।

पाठकों की सेवा में यह उपनिषद्-भाष्य प्रस्तुत करते हुए जहां हार्दिक प्रसन्नता हो रही है, वहाँ महर्षि दयानन्द के वैदिक-सिद्धान्तों का प्रचार करना भी प्रमुख उद्देश्य है । उपनिषदों का जहाँ इतना अधिक महत्त्व है, वहाँ इनकी मिथ्या व्याख्याओं के द्वारा अनेक व्याख्याताओं ने मिथ्या मान्यताओं का भी प्रचार कम नहीं किया है । महर्षि दयानन्द ने उन सिद्धान्त-सम्बन्धी समस्त त्रुटियों को कुशल चिकित्सक की भांति बहुत ही सूक्ष्मता से परखा था और अपने सत्य भाष्य द्वारा उनका समूल खण्डन भी किया । इन मिथ्या मान्यताओं के जो मूल स्तम्भ मन्त्र थे, उनकी तो महर्षि ने सप्रमाण व्याख्या करके उत्तर दिया है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/८/२०१७
भार- ४० ग्राम

अगस्त 2017

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.........................
ग्राम.........................
डा0.........................
जिला.........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।